योग सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 अक्टूबर, 1997 अंक 7

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

वार्षिक शुल्क 65/- रु०
एक प्रति 6/- रु०
द्विवार्षिक शुल्क 120/- रु०
आजीवन शुल्क 651/- रु०

इस अंक के लेख

- भोगे रति मा कुर्थाः 1
- अमृत कण 2
- वैराग्य की साधना (विशेष लेख) 3
  –योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- योग साधना एवं सिद्धियाँ (सम्पादकीय) 6
- विजयादशमी पर्व 9
  –भुवनेन्द्र झा
- ब्रह्मचारी और गृहस्थ में कौन बड़ा ? 12
  –आचार्य चन्द्रहास शर्मा
- भारतीय संस्कृति एवं योग 23
  –पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री
- किमस्ति योग 31
  –द्वारका प्रसाद शर्मा
- श्री सद्गुरुदेव जी की अन्तर्यामिता 37
  –अवनीश कुमार भटनागर

★

'SIDDHAYOG' OCTOBER 1997

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30 अंक 7	ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्, मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः। तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्, कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।	अक्टूबर 1997

भोगे रतिं मा कृथाः

ब्रह्मेन्द्रादि मरूद्र गणाँ स्तृणकणान यत्र स्थितो मन्यते
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विभवास्त्रैलोक्य राज्यादयः।
भोगः कोऽपि स एव एक परमो नित्यो दितो जृम्भते,
भोः साधो ! क्षण भङ्गुरे तदितरे भोगे रति मा कृथाः।।

अर्थात्

सर्वाधिक नित्य जिस भोग मे स्थित पुरुष ब्रह्मा, इन्द्र, प्रभृति देवता गणों को तृण के कण अर्थात् निः सार मानता है, जिसका स्वाद अर्थात् आनन्द प्राप्त करने से त्रिभुवन के राज्य रूप सम्पत्तियाँ उसे नीरस प्रतीत होती है, वह कोई अपूर्व नित्य कल्याणकारी एक ही भोग ब्रह्मानन्द रूप बढ़ाता ही जाता है! अतएव हे सज्जन ! क्षण में ही नाश पाने वाले उससे भिन्न दूसरे सांसारिक भोग मे आसक्ति न करो।

अमृत कण

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।।

-गीता ४/२४

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है- उस ब्रह्म कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

* * * *

देवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति।।

-गीता ४/२५

दूसरे योगीजन देवताओं के पूजनरूप यज्ञ का ही भली भाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में अभेददर्शन रूप यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन किया करते हैं।

* * * *

विशेष लेख

वैराग्य की साधना

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

—: वैराग्य साधना का अमर उपाय :—

वैसे तो वैराग्य साधन के लिए हमारे शास्त्रों में अनेकानेक उपाय वर्णित हैं किन्तु वह प्रायः साधकों के लिए विफल रहते हैं। उसका कारण मात्रा यह है कि अधिकांश में सभी उपदेष्टा मनो नियन्त्रण का उपदेश दिया करते हैं। नियन्त्रण करना ठीक है किन्तु कभी-कभी इस नियन्त्रण का ऐसा परिणाम रहता है कि इन्द्रियों का वेग बलवान हो जाता है और वह नियन्त्रण की मर्यादा को तोड़ करके अपनी वासना की लक्षीभूत विषयों में वह निकलता है। इस बात को स्वयं जगदात्मा श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया है:-

यततो ह्यपि कौन्तेय,
पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि
हरन्ति प्रसभंमनः।।

अर्थात् विद्वान लोग इन्द्रियों के नियन्त्रण का प्रयत्न करते रहते हैं फिर भी इन्द्रियों का वेग इतना बलवान है कि वह बहुत जल्दी मन को हर लेता है। इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार तीव्र वेग वाली नदी के जल को बाँध लगाकर किसी जलाशय में रोक लेते हैं तो वह जल रुक तो जाता है और उस जलाशय के अन्दर इकट्ठा होता रहता है। किन्तु जब वह जलाशय जल से परिपूरित हो जाता है। और जल के वेग से कदाचित बाँधा हुआ बाँध टूट जाय तो उस जल को रोकने की ताकत किसी में नहीं होती। टूटा हुआ वह हजारों गावों और शहरों को नष्ट करता हुआ समुद्र की ओर भाग निकलता है। समुद्र में पहुँच करके ही वह विलय हो पाता है। इससे अच्छा उपाय यही था उस जल को इतने बड़े बाँध से रोकने की चेष्टा नहीं की जाती प्रत्युत जहाँ-जहाँ जिन क्षेत्रों में जल की भारी आवश्यकता थी उन- उन क्षेत्रों में उचित संविधान के साथ बाँट दिया जाता तो उस जल का वेग शान्त हो जाता और कृषि आदि कार्यों के सहयोग से भारी लाभ होता। इसी प्रकार से इन्द्रियों के वेग को बिना लक्ष्य के किसी प्रकार मनुष्य रोक दे तो जब तक वह वेग रुका रहेगा ठीक है- कदाचित वह नियन्त्रण की मर्यादाओं को तोड़कर वह निकला तो वह इतना बह जायेगा कि उस पर फिर नियन्त्रण करना काबू से बाहर हो जायेगा। इसलिए योगाभ्यासी को चाहिए कि वह अपने अभ्यास बल से उस प्रवाह को अन्तर भूमिकाओं में परिवर्तित करता रहे। इन्द्रिय ग्राम इतना सबल हो ही न पाये जिससे ऊँचे नियन्त्रण की आवश्यकता अनुभव में आये। इसी का निर्देश हमारे

आचार्यों ने किया है। कठोपनिषद् में भगवान यमराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है कि-

परांचि स्थानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।''

अर्थात् परमात्मा ने हमारी इन्द्रियों को बाहर की ओर देखने वाला बनाया है इसलिए इनका वेग बाहर की ओर चलता रहता है। बाहर के जितने विषय हैं वह विषयों का मोटा रूप है, जैसे गन्ध तन्मात्र का स्थूल रूप पृथ्वी है, रूप तन्मात्र का स्थूल रूप अग्नि है, रस तन्मात्र का स्थूल रूप जल है, स्पर्श तन्मात्र का स्थूल रूप वायु है और शब्द तन्मात्र का स्थूल रूप आकाश है। हमारी इन्द्रियाँ पंच तन्मात्राओं के स्थूल रूप का ही दर्शन करती हैं न कि सूक्ष्म का, यदि ये पंचभौतिक स्थूलाभोग को छोड़कर सूक्ष्म तन्मात्राओं का दर्शन व अनुभव करने लग जायें तो थोड़े ही दिनों के बाद ये सब इन्द्रियाँ स्थूल विषयों में विगतराग हो जायेंगी। इसलिए हमारे योगाचार्यों ने संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात नाम के दो योगों का वर्णन किया जो लोग संप्रज्ञात योग में प्रवेश कर जाते हैं उनकी इन्द्रियाँ सूक्ष्म तत्वों का अनुभव करने लग जाया करती हैं और ज्यों-ज्यों सूक्ष्म तत्वों का अनुभव करती हैं त्यों-त्यों उनके स्थूलाभोग छूटते चले जाते हैं। इस अभ्यास के क्रमानुसार ज्यों-ज्यों योगाभ्यासी योगी उत्तरोत्तर ऊँची भूमिकाओं में प्रवेश करता है त्यों-त्यों निम्न श्रेणी की भूमिकाओं में वह योगी विगतस्मृति हो जाता है। उत्तरोत्तर उन निम्न श्रेणियों से वह विगत स्पष्ट हो जाया करता है। उसका राग उच्च भूमिकाओं में बढ़ जाता है। इस तरह से योगी अपने चित्त के प्रवाह को जो अभी स्थूल जगत की ओर तीव्रता से प्रवाहित हो रहा था उसको सूक्ष्म जगत की ओर प्रवाहित कर लेता है। प्रवाह चलता रहता है, चित्त की अपनी ताकत का सदुपयोग होता रहता है। इस प्रकार का वह चित्त उत्तरोत्तर उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करता हुआ हमारे परम कल्याण का कारण बन जाता है। कदाचित हम अपने चित्त को कहीं भी प्रवाहित न करें तो कभी भी इकट्ठी की हुई वह हमारी चित्त शक्ति परस्फुटित हो सकती है और इस प्रकार की बिखरी हुई चित्त शक्ति परिणाम में दुखद रहेगी। इसलिए योगी को चाहिए कि वह निम्नश्रेणी की भूमिकाओं से अपने आपको उत्तम भूमिकाओं की ओर बढ़ाता चला जाय। जिससे स्वतः ही उसका मन निम्न श्रेणी से विगतराग हो जाय भगवान् पंतजलि देव ने अपने योगसूत्र में-

वितर्क विचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः।

इस सूत्र पर व्यास देवजी ने अपने भाष्य में पंक्तियाँ लिखी हैः-

''वितर्कः चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः, सूक्ष्मो विचारः आनन्दोः ह्लादः। एकात्मिका। संविद् अस्मिता। तत्र प्रथमश्चतुष्ट यानुगत समाधिः स वितर्कः, द्वितीयो वितर्क विकलः सविचारः। तृतीयो विचार विकलः सानन्दः। चतुर्थ स्तद्वि कलोऽस्मितामात्र इति, सर्वएते सालम्बनाः समाध्य।''

वितर्क विचार आनन्दानुगत समाधि सावलम्ब है। जिस समय योगी का अपने सार्वदेशिक मन को एकाग्र करके संप्रज्ञात

योग की ओर बढ़ना आरम्भ हो जाता है ज्यों-ज्यों उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करता जाता है। त्यों-त्यों नीचे की भूमिकाओं को छोड़ता जाता है जिस प्रकार से गाँव का रहने वाला एक व्यक्ति गाँव के वातावरण को छोड़कर शहर में प्रवेश करता है तो वह ग्रामीण वातावरण को भूल जाता है और उसे फिर नागरिक जीवन ही पसन्द आ जाता है। इसी प्रकार बाह्य वासना दोषदर्शी व्यक्ति अन्तर्मुखता को प्राप्त करके बाह्य-वासनिक भोगों को बिल्कुल छोड़ देता है। संप्रज्ञात योग की प्रथम श्रेणी में प्रवेश करने वाला साधक सार्वभौम चित को इकट्ठा करके अपने भीतर के दर्शन में लगाता है। वह सार्वभौम से निवृत होकर वितर्कानुगत योग में प्रवेश करता है। वितर्कानुगत योग में उसको तन्मात्राओं से संबन्ध रखने वाले बड़े-बड़े दिव्य अनुभव होने लग जाते हैं। और उन सब दृश्यों को देखता हुआ वह योगी शनैः शनैः विचारानुगत योग का अधिकारी हो जाता है और उसके सामने देवलोक के दृश्य आने लगते हैं। विचारानुगत समाधि में ये सब दृश्य उसके सामने आने लगते हैं और वह स्वर्गीय दृश्यों को देखा करता है तो मनुष्य लोक के दृश्यों से उसका वैराग्य हो जाता है। विचारानुगत समाधि से जिस समय आनन्दानुगत समाधि में प्रवेश करता है तो उसे स्वर्गीय दृश्यों से भी स्वाभाविकीय उपरति होने लगती है और शनैः शनैः स्वर्गीय दृश्यों से भी उसको वैराग्य हो जाता है। इसी प्रकार से आनन्दानुगत समाधि का योगी अस्मितानुगत समाधि में प्रवेश करता है तो आनन्दानुगत के विषय को छोड़कर अस्मि प्रत्यय को आधार बनाकर उसीमें विलीन रहता है। इस श्रेणी में आकर वह दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्ण होकर वशीकरण संज्ञा वैराग्य को प्राप्त करता है और इससे आगे आत्मा का निजी स्वरूप जिसके लिए महर्षि पंतजलि ने **'तदाद्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्'** कह करके अभिव्यक्त किया है। अस्मितानुगत योग की अस्मि वृत्ति निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहलाती है यह वृत्ति अन्य सभी वृत्तियों का उपशमन करके स्वयं भी शान्त हो जाया करती है। ऐसी स्थिति में आत्मा केवली भाव को प्राप्त हो जाता है। यही पर-वैराग्य की स्थिति है। इसी को महर्षि पंतजलि ने **'तत्परं पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्'** कहकर अभिव्यक्त किया है इसी वैराग्य को मोक्ष का नान्तरीयक वर्णन किया गया है। यही परा स्थिति है जिसके लिए मनुष्य जीवन भर प्रयत्नशील रहा करता है। किसी भाग्यवान जीव को जन्म से ही विरक्ति की भावनायें पैदा हो जाया करती है वह उसका पूर्वजन्मकृत अभ्यास ही होता है। संसार में इस प्रकार के व्यक्ति बहुत कम ही देखने में आते हैं जिनके अन्दर जन्म से ही गुणवितृष्णता हो किन्तु जो लोग श्री गुरुदेव जी की कृपा को प्राप्त करके संप्रज्ञात योग के अभ्यासी बने रहते हैं ये लोग शनैः शनैः वैतृष्णता को अवश्य ही पा जाया करते हैं। अतः हर साधक को चाहिए कि वह अपने आप को गुण वितृष्ण बनाने के लिए संप्रज्ञात योग का विद्यार्थी बनाये तभी वह साधक **'तत्परं पुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्'** को प्राप्त हो सकेगा।

* * *

सम्पादकीय

योग साधना एवं सिद्धियाँ

विभूतियाँ अत्यन्त श्रद्धावान व संयमी साधक को ही विभूषित करती है। हर साधक सिद्धिभाजन नहीं बन पाता। सिद्धियाँ साधक के जीवन में बनी रहे इसके लिये आवश्यक है कि साधक **'निर्मानमोहः जितसङ्गदोषः'** का सूत्र अपने जीवन में धारण कर ले। सङ्गदोष से सिद्धियाँ लुप्त भी हो जाया करती है। हमारे प्राणाधार सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रायः अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही टिका करता है। योगदर्शन में भी साधक को चेतावनी दी गई है कि सिद्धियों के उदय हो जाने पर साधक को संग दोष से बचना चाहिये तथा उसके मन में अभिमान भी नहीं आना चाहिए। सतोगुण के विकास पाने पर सिद्धियाँ प्रकट होती है। सतोगुण के विकास के अनेक मार्ग है, ईश्वर समर्पण, ज्ञानयोग, ध्यान योग, भक्ति आदि सभी सतोगुण के विकास के साधन है। योग साधना में योगी ध्यानयोग के तरीके से सद्य ही मन को एकाग्र कर सिद्धि-भाजन बन जाता है। योगी अल्पकाल में ही सिद्धियों का स्वामी बन जाता है इसका कारण यह है कि योगी लयता के सिद्धान्त पर चलता है। जिस-जिस तत्व में लय होता चला जाता है मन उस तत्व के गुणों एवं शक्तियों से युक्त होता चला जाता है। भक्ति आदि अन्य साधनों में साधक धीरे-धीरे अपनी साधना की सीढ़ियों को पार करता है क्योंकि वह लयता की विधि से नहीं चलता है अतः उसे साध्य तक पहुँचने में समय अधिक लगता है।

जहाँ योगी मन की एकाग्रता से अलौकिक कार्यों को सम्पादन किया करता है। वहाँ भक्त अपनी भक्ति के बल से भी उसी प्रकार के कार्य कर लिया करता है। वस्तुतः देखा जाये तो विभूतियों के उदय होने में अन्तःकरण की शुद्धि ही कारण रहता है। चाहे हम ध्यान योग की रीति से मन को केन्द्रित करें आत्मसमर्पण की रीति से अथवा वीतरागी पुरुषों के ध्यान से, शक्ति का अर्जन तो सभी अवस्थाओं में होगा ही होगा। कुछ लोग ऐसा समझते है कि देवी देवताओं की उपासना से ही शक्ति प्राप्त होती है किन्तु ऐसी बात नहीं है। कोई निराकार ब्रह्म का उपासक अथवा कोई मुसलमान फकीर जो किसी देवी देवता की उपासना नहीं करता- उसमें भी वैसी ताकतें होती है जो एक सगुण उपासक में होती है। उसमें भी अन्तःकरण की निर्मलता ही कारण है। मानव का मन उस परम चेतन का अंश है इसलिये योगियों ने मन को ज्योतियों का ज्योति कहा है। मन की चेतना का पूर्ण विकास योग के द्वारा प्राप्त किया जाता है। योगियों ने मन की अतुलित शक्तियों को समझा है। और इसकी शक्तियों का प्रत्यक्षीकरण किया है।

'सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो' ईश्वर सबके हृदय में विराजमान है। उस ईश्वर की सन्निधि पाकर जड़ होते हुये भी मन चेतन बन जाता है। जिस प्रकार अग्नि के संयोग से लोहखण्ड में भी दाहकत्व शक्ति आ जाती है उसी प्रकार से उस परम चेतन का संस्पर्श पाकर मन सब कुछ करने में सक्षम है। किन्तु मलिनता से आच्छादित हो जाने के कारण मन अपने वास्तविक स्वरूप में ठहर नहीं पाता। एक सामान्य मनुष्य भी स्वप्न जगत में मन की शक्ति का परिचय पा सकता है। स्वप्न में मन बिना किसी उपादान कारणों के नाना प्रकार की सृष्टि का निर्माण कर लिया करता है। खेल ही खेल में दिव्य महल, बंगले आदि बना लेता है कभी राजा बन जाता है तो कभी रंक ! स्वप्न में ही कभी आकाश में उड़ान भरता है और कभी पानी पर भूमिस्थ की तरह चलने लगता है। कभी सुखी होता है, कभी दुःखी होता है किन्तु स्वप्न से जागने पर किसी वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता, ये सब साधारण मानव के मन की बात है। योग साधना से मन एक ऐसी स्थिति पर पहुँच जाता है जहाँ पर स्वप्न स्वप्न नहीं रह जाता। स्वप्न में हम जिस-जिस भी वस्तु का निर्माण कर सकते हैं उन सब को योगी इच्छा मात्र से व्यक्त रूप में प्राप्त कर लिया करता है। अर्थात् सब को प्रत्यक्ष प्राप्तकर लेता है। कहने का तात्पर्य यह है योगी के लिये कोई कल्पना नहीं रहती सब प्रत्यक्षवत् हो जाता है। बाल्यावस्था में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज प्रातः स्वप्न में आकाश गमन के दृश्य देखा करते थे एक दिन उन्होंने अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी को यह बात बताई ! श्री प्रभु जी ने कहा– "ये सब योग सिद्धियाँ हैं कालान्तर में ये सब सिद्धियाँ तुम्हें स्वतः प्राप्त रहेंगी।" अस्तु! देवलोक में रहने वाले देवताओं को भी इच्छा मात्र से सकल पदार्थ तत्क्षण प्राप्त हो जाते हैं! ये देवता वे योगी होते हैं जो समाधि की पराकाष्ठा की प्राप्ति से पहले शरीर छोड़ जाते हैं और प्रकृतिलीन योगी अथवा विदेह नामक देवता बन जाते हैं। योग साधना के फलस्वरूप देवता विशेष का देह पाकर योग सिद्धियों से संतृप्त रहा करते हैं। ये सब मानसिक शक्ति अथवा संकल्प शक्ति का खेल है। मन की शक्ति का ही दूसरा नाम संकल्प शक्ति है।

ध्यान योग के प्रभाव से ही संकल्प शक्ति का विकास होता है प्रकृति के परा और अपरा दो रूप हैं। पराप्रकृति अव्यक्त है, सर्वगत है शाश्वत है, अपरा प्रकृति अनित्य है व्यक्त है। मन-बुद्धि अहंकार आदि अपरा प्रकृति के विभाग हैं। निर्जीव समाधि में ये सब अपने मूल परा प्रकृति में लय हो जाते हैं। अपरा प्रकृति में बुद्धि सर्वाधिक सूक्ष्म है। योगी लोग इस सूक्ष्मता के अनुसन्धान में लगे रहते हैं। योगी ही जानता है कि अपने मन को एकाग्र अथवा एकमुखी बना लेने पर वह दुःखदा प्रकृति से छूटकर प्रकृति पर शासन करने वाला बन सकता है। जिसका जितना बौद्धिक विकास है, सूक्ष्मता में गति है उतने ही अंशों में वह प्रकृति का शासक बन जाता है। ईश्वर अपने संकल्प शक्ति के आधार पर ही सृष्टि का निर्माण पालन एवं संहार कर लिया करता है। इस कार्य को सम्पादन करने में जो किसी ...

अपनी संकल्प शक्ति से जैसा कुछ करना चाहे परा प्रकृति के माध्यम से सब कर लेता है। योग साधना से अन्तःकरण मे व्याप्त अविद्या के कट जाने पर योगी इतनी ऊँचाई प्राप्त कर लेता है जहाँ पर ईश्वर एवं उन सिद्धो मे कोई भेद नही रह जाता। वे सिद्ध भी ईश्वर तुल्य हो सृष्टि निर्माण, संहार मे सक्षम बन जाते है। ईश्वर के संकल्प की तरह ही उनका संकल्प अमोघ हो जाता है।

सामान्य मानव मे इच्छाशक्ति तो होती है किन्तु संकल्प शक्ति का अभाव रहता है। मानस स्तर एवं शक्ति के अनुरूप ही अलग–अलग भुवनो की प्रतिष्ठापना हुई है। प्रत्येक लोक मे रहने वाले इन जीवो का मानस स्तर एवं संकल्प शक्ति एक दूसरे से भिन्न रहा करती है। यह तो रही सृष्टि क्रम एवं व्यवस्था की बात ! किन्तु योगी मानव शरीर मे रहते हुये भी ब्रह्मलोक तक के जीवो से अधिक शक्ति सम्पन्न हो सकता है। उसको आत्मयोग के बल से ही यह सम्भव होता है। ब्रह्मलोक तक के जीव भी समाधि की पराकाष्ठा वाले नही होते अतः पुनरावर्तन वाले होते है। फिर आवागमन होता है। जबकि योगी यदि समाधि की चरमावस्था को प्राप्त कर ले तो **'विनिष्पन्न समाधिस्तु मुक्ति अत्रैव जन्मनि'** के अनुसार मानव देह मे रहते-रहते ही मुक्त हो जाता है उसे यहीं विदेहमुक्ति मिल जाती है और देहपात् के अनन्तर कैवल्यभाक् बन जाता है। (क्रमशः)

आकाश, वायु, ध्वनि तथा ईश्वर का हमें आभास होता है। ये वस्तुएँ दिखलाई नहीं पड़तीं। इसी प्रकार आत्मा कभी प्रत्यक्ष नहीं होती। उसका आभास मात्र होता है। जब चेतना हमारे शरीर से निकल जाती है तो उसका सम्बन्ध सभी भौतिक वस्तुओं से टूट जाता है। सुप्तावस्था में चेतना जाग्रत रहती है। जीव अव्यय स्वादु और अस्वादु दोनों फलों को भोगता है। ईश्वर अव्यय कुछ नहीं भोगता बल्कि जीव क्या कर रहा है इसे देखता हैं।अव्यय की दो प्रकृति हैं– पर व अपर। मन के दो रूप हैं-परमात्मा व जीवात्मा। जीवात्मा पर काल का प्रभाव हो सकता है ; परमात्मा पर नहीं।

विजयादशमी पर्व

भुवनेन्द्र झा

वर्षों पहले श्री गुरुदेव जी ने इस धरा पर अपने अवतरित होने का आभास दिल्ली मे प्रोफेसर अभिरामजी गुप्ता (अपने गुरु भाई) की कोठी पर कराया था कि ''लल्ला आज तो हम अभी-अभी आये है- इतने से ही है।'' प्रातःकाल की (श्री विजयादशमी) बेला मे उनके कर कमलों के इस संकेत, ''इतने से ही है,'' को पाकर सबके हृदय खिल उठे व बड़े उल्लास के साथ अपने जीवन धन का जन्म-दिवस लड्डुओ को वितरित कर मनाया गया। तब से प्रति वर्ष दिल्ली मे ही सभी भाई बहन मिलकर मनाते रहे। उसके बाद विभिन्न स्थानों सहारनपुर, टूण्डला, झाँसी, मिरजापुर, बनारस, आदि के भाई बहन बड़े ही उत्साह से, जिन्हे वे करुणा सागर जी इस अवसर का सौभाग्य प्रदान करने की कृपा कर देते थे, वेद पाठी ब्राह्मणो द्वारा श्री गुरुदेव जी का पंचामृत से (दूध, दही, घृत, मधु, शर्करा) मंत्रोच्चारण सहित अभिषेक कर चरणामृत पान कर निहाल हो जाते थे। जिन स्थानों के भाई बहनों को इस अवसर को प्राप्त करने का सौभाग्य पाने से वंचित रह जाते रहे उनकी भावनाओं को जानकर कृपा सागर जी की प्रेरणा से समर्थ भाइयो ने श्री सिद्धगुफा सवाई धाम मे ही आकर बड़े भव्य समारोह के साथ इस उत्सव को सभी भाई बहनों को आमंत्रित करते हुए मनाकर मनोकामनाये पूरी की। एक अनोखा उल्लसित उत्साहपूर्ण दृश्य, अपने-अपने हाथों मे पञ्चामृत/दुग्ध पात्र लिये हुए पंक्ति मे खड़े रहकर श्री सद्गुरुदेव के चरणकमलो मे अर्पित करने को आतुर, देखकर देवगण भी पुष्पवृष्टि कर इस सौभाग्य को पाने की लालसा रखते थे। प्रतीक्षारत बनारस के भाइयो ने इस अवसर को पाकर विजयादशमी की प्रातः ब्रह्ममहूर्त की बेला मे श्री सद्गुरुदेव के अवतरण की अगवानी मधुर शहनाई वादन व नगाड़ो की ध्वनि के साथ की। भोलेनाथ के प्रेम से भरे हुए हृदय नदेसर मे चारो तरफ से उमड़ते आ रहे थे दिन भर यह तांता चलता रहा। वहाँ तो भाइयो ने कलशो दूध से ही श्री गुरुदेव जी का अभिषेक किया जो घंटो चला। काशी के अनेको विद्वान पंडितो ने सस्वर वेद मंत्रों द्वारा पंचामृत से अभिषेक संपन्न कराया। इसकी स्मृति आते ही हृदय भर-भर आता है:-

आओ हे गुरुदेव कि तुम बिन
सूना यह संसार हृदय मेरा भर-भर आये ऽ।।
हे ! परम पिता आकर देखो,
सब गौवें बालक हैं रोते।
कोई ना जो धीरज दे ऽ,
बिलखें अरु सुध बुध खोते।
लल्ला कहकर टेक टेक निभाओ,
मन 'मोहन' घनश्याम हृदय मेरा भर भर आये ऽ।।

मात पिता अरु बन्धु सखा,
सब तुमहीं नाथ हमारे हो ऽ।
योगेश्वर सिद्धेश्वर "भुवनेश्वर"
के एक सहारे हो।
अर्पित है यह जीवन तुमको,
अपना लो हे नाथ ! हृदय मेरा भर भर आये ऽ।।

अब उनका पावन जन्म दिवस सभी आश्रमों श्री सिद्धगुफा सवाई दिल्ली, ऋषिकेश अलूपुर आदि स्थानों पर मनाया जा रहा है।

अलूपुर धाम श्री गुरुदेव जी की पावन अवतरण स्थली है वहाँ स्थापित उनके शरीर विग्रह का उसी प्रकार पंचामृत/दुग्ध से अभिषेक भाव विभोर होकर कराते हैं। कण-कण में विद्यमान कालातीत बन्धन मुक्त अजन्मा होकर भी इस जग में अपनी मनहर लीला करने आये। मुझे १० अक्टूबर के पावन जन्म दिवस पर स्व० "दिव्य" जी की इस रचना की स्मृति आई कि वे (श्री सद्गुरुदेव) क्यों इस धरातल पर अवतरित हुए:-

जो अथ-इति से शून्य अजन्मा जिसको जग ने जाना,
जन्म दिवस क्यों आज बताओ हमने उसका माना ?
भूत, भविष्यत्, वर्तमान का बन्धन जिसे न भाया,
कालातीत काल के बन्धन में क्यों बँधकर आया ?
क्यों काया की नाशवान् नगरी में आया योगी,
बना जरा, कौमार्य और यौवन का क्यों संयोगी ?
गुणातीत क्यों आज गुणों के सागर में उतरा है,
बना अगोचर गोचर कैसे, कैसे रूप धरा है ?
मन के थे यह प्रश्न-किन्तु मन की गहराई बोली,
और उसी ने धीरे-धीरे प्रश्न ग्रन्थि यह खोली।
जब जब होता ह्रास योग का जग भोगों में जाता,
निःश्रेयस अभ्युदय छोड़ जन पाप-पुञ्ज अपनाता
तब-तब ही ले जन्म धरा पर सिद्धेश्वर हैं आते,
कभी राम, शुकदेव, श्याम, शिव मोहन हैं बन जाते।
जग को जगमग आग्रत करने ऐसी ज्योति जगाते,
जिसके प्रकाश में भटके-भूले पथ अपना पा जाते।
इसीलिये मन आज मना लो जन्म-दिवस का मेला,
बड़े पुण्य से, बड़े भाग्य से, आई है यह बेला।
सद्गुरु रूपी परम पुरुष का आओ करलें वन्दन,
आओ आज करें हम मिलकर 'मोहन' का अभिनन्दन।
वे क्या हैं कौन हैं क्यों आये
वे ही जाने अथवा "सो जानें जिनि देहु जनाई!"
जन्म दिवस 'गुरुदेव' आपका विजय पर्व ले आया,

सिद्धयोग

परम् पूज्य श्रद्धास्पद
योग-योगेश्वर श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

तुमने ही गुरुदेव ज्ञान का दीपक यहाँ जलाया,
योग-मार्ग ही मुक्ति-मार्ग है तुमने यह बतलाया।
तुमने अपने शक्ति-कोष से भरदी उसकी झोली,
श्रद्धा भरे हृदय से जिसने कुटी तुम्हारी खोली।।

ब्रह्मचारी और गृहस्थ में कौन बड़ा ?

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा

परमपिता प्रभु की सृष्टि मे अनेक प्रकार की जीव है। उनमे मनुष्य विवेक सम्पन्न होने के कारण श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। मनुष्यो मे सभी की प्रकृति एक जैसी नही होती। नाना भाँति की प्रकृतियो के कारण व्यक्तियो का व्यवहार अनेको प्रकार का होता है। तत्ववेत्ताओं ने तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण के आधार पर त्रिविध जीव माने है। योगदर्शन मे उन गुणो के परस्पर मिश्रण से मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध चित्त के प्राणी माने गये है। संत तुलसी ने चार प्रकार के व्यक्ति माने है- विषयी, साधक, सिद्ध तथा सयाने। विषयासक्त इन्द्रियों के गुलाम व्यक्ति नारकीय पामर कोटि के होते है उन्हे योग ध्यान, ईश्वर भक्ति, यज्ञ, दान, तप आदि व्यर्थ आडम्बर मात्र लगते है। साधक कोटि के व्यक्ति दुःख सहकर भी आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान तथा ईश्वर भक्ति मे लगे रहते है। परिणाम मे जो सुख कारक है उसके लिए वे तात्कालिक दुःखों को सहने की आदत डाल लेते है। जिससे विपरीत परिस्थितियो मे भी चित्त की प्रसन्नता हाथ से नही जाने देते। तीसरे सिद्धकोटि के व्यक्ति जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर अपने परमात्मत्व के साथ एक रस रहते है। वे प्रकृति पर अपनी हुकूमत चलाते है, प्रकृति की हुकूमत उन पर नहीं चलती। चौथी कोटि के व्यक्ति 'सयाने' किस्म के होते है। उन्हे पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म उचित-अनुचित का ज्ञान तो होता है (तथापि वे मनमाने ढंग से जीवन यापन किया करते है। अपनी लुभावनी बातो के जाल मे भोले-भाले लोगों को फँसाने की कला मे उस्ताद होने के कारण उन्हे सयाना कहा जाता है। ऐसे प्राणी पर उपदेश कुशल होते है। शिष्य बनने की अपेक्षा ऐसे लोग स्वंभू गुरु बन जाते है। नाना प्रकार की वेष रचना कर लोगों से अपनी पूजा कराने मे ही ऐसे लोग अपने बुद्धि वैभव का सयानापन मानते है। तुलसी बाबा ने ऐसे लोगों के लक्षणो के विषय मे स्थान-स्थान पर अच्छी चुटकी ली है। यथा-

बाके नख और जटा विशाला। सोई तापस जोगी कलिकाला।
जो छल झूठ मसखरी जाना। कलियुग सोई गुणवन्त बखाना।

जो पराये धन को हड़पने की कला मे जितना निपुण होता है। वह उतना ही बड़ा सयाना माना जाता है। धार्मिक क्षेत्र मे 'सयाने' लोगों की भरमार है। अन्तर्मुखी वृत्ति, अन्तर्ज्योति प्रकाश, आत्मज्ञान का अनुभव प्राप्त करने के लिये जीवन को कठोर संयम, नियम, तप साधना की कसौटी पर कसकर तैयार करना पड़ेगा। उसके चक्कर मे कौन पड़े। अपने को ब्रह्मचारी या सन्यासी, साधू या सीधे एक हजार सवा एक सौ आठ,

हिमालय का सिद्धयोगी या देवी भक्त, हनुमान भक्त या शिवभक्त प्रचारित कर सिद्धगुरु, या महायोगिनी का साइन बोर्ड लगाकर कमाई का अच्छा साधन हो सकता है।

ऐसे लोगों के अहंकार का थर्मामीटर इतना ऊँचा चढ़ जाता है। कि उनके उन्माद का ज्वर उनके व्यवहार में देखा जाता है। किसी सभा-सम्मेलन में पहुँचने पर ऐसे लोग सबसे पहले यह चाहते हैं कि उनकी जय बोली जाय। उन्हें ऊँचा आसन दिया जाय और उनका परिचय देते समय जितने विशेषण सम्भव हो सकते हैं, उतने उनके साथ जोड़ दिये जायं। यह सब भी निरर्थक नहीं है। बाह्यआडम्बर और माया से अच्छे-अच्छे बुद्धिमान भी ठगे जाते हैं। एक योग सम्मेलन में इसी प्रकार का एक दृश्य उपस्थित हुआ। कल तक जो सर्वभक्षी और सभी प्रकार के कुकृत्य करने वाले थे, वे कपड़े बदलकर और दाढ़ी जटायें बढ़ाकर 'स्वामी' जी हो गये। अब उन्हें सभी साधकों, विद्वानों तथा मनीषियों से ऊँचा आसन चाहिये। मुझे संयोजक की सेवा दी गयी थी।

यथामति मैंने विद्वानों, तपस्वी, साधकों के साथ उन स्वामियों का भी बहुमान शब्दों द्वारा किया। अन्य सभी के साथ सम्मानित होने से उन 'ब्रह्मचारी' तथा 'स्वामी जी' को कष्ट हुआ। उनहोंने कहा वे ब्रह्मचारी हैं, सन्यासी हैं अतः उन्हें विशेष दर्जा मिलना चाहिये। अपनी मोटी बुद्धि से मुझे यही सूझा कि बन्दर भी ऊँचाई पर बैठ जाता है, चील कौवे भी ऊँचे बैठ जाते हैं। इससे क्या वे महान हो गये। जो अन्तर्जगत का जितना गहरा पथिक है वह उतना ही अधिक सम्मान्य और अनुकरणीय है। सयाने लोग प्रायः कहा करते हैं- 'इन गृहस्थियों को यह अधिकार नहीं, वह अधिकार नहीं। यह करें वह न करें' आदि-आदि। गृहस्थधर्म की शक्ति का उन्हें पता ही नहीं कि वह भगोड़ों से कहीं अधिक ताकतवाला होता है। यदि वास्तव में वह सद् गृहस्थ है तो उसका पानी तथा कथित ब्रह्मचारी और 'स्वामी जी' भी भरने को तैयार हो जायेंगे। सद्गृहस्थों के तप और ईश्वर भक्ति के पुण्य-प्रताप से ही उनके यहाँ भगवान श्रीराम, वशिष्ठ, परशुराम, अत्रि दत्तात्रेय आदि जैसे महापुरुष इस पृथ्वी लोक पर आने को विवश हुए। वेद में कहीं सन्यास का विधान नहीं है। परवर्ती काल में देश में बौद्धों के प्रादुर्भाव के समय सन्यासी तथा भिक्षु परम्परा आयी। उसीका परिणाम यह हुआ कि देश लगातार गुलाम होता रहा। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव के मुख कमल से मैंने सुना था कि उनके गुरुभाई श्री गोपालानन्दजी महाराज रंगे कपड़े वाले ऊपरी आडम्बर धारी सन्यासियों को 'रंगा हुआ गीदड़' कहा करते थे।

श्री गुरुदेव जी को जब दीक्षा देने का अधिकार उनके गुरुदेव आनन्दकन्द श्री प्रभु राम लाल जी महाराज ने दिया तो ऋषिकेश में एक वृद्ध सन्यासी योगदीक्षा लेने श्री गुरुदेव के चरण कमलों में पधारे। उस समय श्री गुरुदेव की आयु युवावस्था थी तथा

सन्यासी प्रौढ़ आयु के थे। इसे देखकर श्री गुरुदेव संकोच में पड़ गये। उन्होंने अपने गुरुदेव को एक प्रार्थना पत्र लिखा कि श्री प्रभु जी इन वयोवृद्ध महात्मा को मैं कैसे दीक्षा दूँ ? यह तो सन्यासी है। श्री प्रभुजी का उत्तर आया- 'बेटा, सन्यासी, क्या ? सन्यासी के बाप को भी तुम दीक्षा देने के अधिकारी हो'। यह ताकत श्री वृन्दावन धाम के साधना काल मे प्रसन्न होकर योगयोगश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने तुम्हें दे रखी है। ऊपरी गेरुए कपड़ों से सन्यासी बनने में अधिक खर्च नही है मन को रंगने के लिए कठोर साधना की आवश्यकता है भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र के अनुसार जो कर्मफल का त्याग करने की सामर्थ्य रखता है, वही वास्तविक सन्यासी है न कि अग्नि को न छूने वाला तथा निठल्ला रहकर समाज पर बोझ बनने वाला। **'यः कर्मफलत्यागी स त्यागी इत्यनिधीयते।'**

गृहस्थ यदि मर्यादा का पालन करते हुए योग ध्यान परायण है, वह रंगे हुओं से अधिक अच्छा है। उसके पतन का कारण केवल मात्र इतना ही है कि उसका मन 'मैं' और 'मेरे' में घर और अपने बाल बच्चों की ममता मे फँस जाता है। विषय वासना अधिक प्रबल बनी रहती है। यदि मर्यादापूर्वक जीवन यापन करते हुए योगध्यान परायण होकर गृहस्थ धर्म का पालन करता है तो वह धन्य है। जिसमें विषयासक्ति है वैसा गृहस्थ निश्चित रूप से विषयी पामर जीव निन्दनीय है। जीवन में ज्ञान और वैराग्य होना चाहिये। वह चाहे जिस स्थिति मे हो, वही स्थिति उत्तम है। गृहस्थाश्रम है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों का आधार है। इन तीनों का भरण-पोषण गृहस्थ की दम पर होता है। यदि ब्रह्मचारी और सन्यासी जिसकी बिल्ली उसी से म्याऊँ करे तो बुरा लगता है। गृहस्थों को हेय मानना सबसे बड़ी भूल है। गृहस्थी जीवन रूपी संग्राम (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से) सुरक्षित किले के अन्दर रहकर लड़ता है। यदि किला मजबूत है और राजा जनक की तरह अनासक्तभाव से कर्म करते हुए साधनारत रहता है तो वह सरलता से विजय प्राप्त कर सकता है। जो केवल बच्चे-बच्चों की रें-रें, पें-पें और हाय-हाय में डूबा हुआ है। उससे तो रंगा हुआ छड़ा भगोड़ा कहीं अच्छा है। कितने साधु बने ऐसे लोग है जो भजन बिल्कुल नही करते, केवल आश्रम बनाने, चेला चेली बनाने और पेट भरने के चक्कर में ही पड़े रहते हैं। उनके साधु या सन्यासी होने का क्या लाभ ? कुछ समय पूर्व पुष्कर में एक महात्मा बड़ी लगन से अपनी साधना किया करते थे। उनके दर्शन करने मै कभी-कभी जाया करता था। एक दिन वे अपने शिष्यों को डाँटते हुए बोले- तुम लोगों ने घर-बार छोड़ा, बेष बनाया किसलिये ? 'भजन करने के लिए न', फिर तुम लोग वही नही करते। दिनभर गपशप और हलुआ पूड़ी के चक्कर में सोचते रहते हो। आज कहाँ भण्डारा होगा ? वहाँ कितनी दक्षिणा मिलेगी आदि-आदि

तुम लोगों के मन में हर समय घूमा करता है ? तुमसे तो ये गृहस्थी अच्छे हैं जो दिनभर जी तोड़ मेहनत करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं तथा कुछ न कुछ समाज की सेवा भी करते हुए सुबह शाम नियम से योगध्यान परायण रहते हैं। देखो तुम्हारे सामने ये प्रोफेसर बैठे है ? उन्होंने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा। उस समय मुझे सन्यासी शिष्यों की प्रताड़ना और अपनी प्रशंसा कुछ अटपटी लगी थी, किन्तु आज वास्तविकता लग रही है। मनुष्य को मानवता की शिक्षा देने वाले भगवान मनु गृहस्थाश्रम को माता के समान सब का पालन-पोषण करने वाला महान, सब आश्रमों का आश्रयदाता कहते है-

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
एवं गार्हस्थमाश्रित्य वर्तन्ते इतराश्रमाः।। मनु।

गृहस्थाश्रम मे दूध-दही और गोरस का सत्ववर्द्धक पौष्टिक आहार उपलब्ध होता है। नन्हें-नन्हें चुनमुन मुन्हों के साथ समरस होकर बातचीत करने पर चित्त सरल, निर्दोष तथा प्रसन्न रहता है। गुरुजनों का आदर पूजन करते रहने से पूर्व जन्मकृत क्लिष्ट कर्म विपाक आसानी से शान्त हो जाते है। यज्ञ, दान, तीर्थाटन, और अतिथि सेवा करने से पुण्यों का खजाना बढ़ता रहता है। एक महात्मा कहा करते थे कि हिमालय पहाड़ को तराजू के एक पलड़े में रख दिया जाय और दूसरे पलड़े मे गृहस्थी के कष्ट को तो गृहस्थी के कष्टों का पलड़ा भारी पड़ेगा। गृहस्थ दुःखों को सहता हुआ प्रभु का पल-पल स्मरण करता रहता है जिससे उसकी नैया पार लगे। धर्मपत्नी के सहयोग से जीवन को सन्मार्ग पर चलाता रहता है। धर्म के लिए ही जहाँ पत्नी का पूरा सहयोग मिला करता है उसी के लिए कहा गया है- **'धन्यः गृहस्थाश्रयः।'**

ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते है- एक शादी न करने या न होने के कारण स्त्रियों से अलग रहने वाले स्वयं को ब्रह्मचारी कहते है। दूसरे जो गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण को उतार कर नियम-संयम का अनुष्ठान करते है। ब्रह्म प्राप्ति के लिए जीवन को ऊर्ध्वरेतस् का अभ्यास करने वाले सही अर्थों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है। ऐसे ब्रह्मचारी गृहस्थों से श्रेष्ठ है। वे मनुष्यों से तो क्या, देवताओं के द्वारा भी वन्दनीय है। इसके अतिरिक्त दूसरे कारणों से बने ब्रह्मचारियों और धार्मिक जनों तथा सन्यासियों के सम्बन्ध में आचार्य चाणक्य ने कहा है-

असक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधितो देवभक्तश्च वृद्धानारी पतिव्रता।।
आर्ता देवान् नमस्यन्ति, तपः कुर्वन्ति रोगिणः।
निर्धना दानमिच्छन्ति, वृद्धा वेश्या तपस्विनी।।

अर्थात- शरीर में बल न रहने पर कौन व्यक्ति सज्जन नही बन जाता। बल रहते हुए ही जो आत्मसंयमी बने उसकी बलिहारी है। इसी प्रकार विवाह करने के लिए धन और स्वरूप न होने पर कौन ब्रह्मचर्य रत नहीं रहता- व्याधि पीड़ा से दुःखी सब ओर से निराश होने पर देवताओं की भक्ति करता है। तथा वेश्या स्त्री जवानी समाप्त हो जाने पर तपस्विनी बन बैठती है। दुःखी होने पर देवों को नमस्कार करते है, रोगग्रस्त होने पर तप और संयम मजबूरी मे करते है। निर्धन व्यक्ति दान करना चाहते है, वेश्या वृद्धा हो जाने पर मजबूरी मे तपस्विनी बन जाती है। इसी प्रकार तुलसीदास जी के अनुसार आजकल के अधिकांश साधु सन्यासी इस प्रकार के हैं-

नारि मुई घर सम्पति नाशी। मूंड मुड़ाय भये सन्यासी।

ब्रह्मचर्य साधना सर्वोत्तम साधना- वास्तविक रूप में ब्रह्मचर्य साधना करने वाला वन्दनीय है। मुण्डकोपनिषद् मे आत्म साक्षात्कार के उपायों की चर्चा के प्रसंग में चार साधनों का उपदेश है- सत्य, तप, सम्यक्ज्ञान (अनुभव) तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य। **'सत्येन, लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा। सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।।'** अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य व्रती को कालजय करने वाला माना गया है। देवराज इन्द्र ब्रह्मचर्य के कारण ही देवताओं में श्रेष्ठत्व प्राप्त करता है।

'ब्रह्मचर्येण तप सा देवा मृत्युमपाघ्नत।

इन्द्रो ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत।। अथर्ववेद

महाभारत में भी ब्रह्मचर्य को सबधर्मों से श्रेष्ठ तथा सर्वोत्तम गति प्रदान करने वाला माना गया है ब्रह्मचर्य ही ब्रह्म का स्वरूप है।

'यदिदं ब्रह्मणो रूपं ब्रह्मचर्यमिति स्मृतम्।

परं तत्सर्वधर्मेभ्यस्तेन यान्ति परां गन्तिम्।। महाभारत

दूसरे स्थान पर महाभारत से ब्रह्मचर्य को दीर्घायुष्य देने वाला बताया गया है। देखिये-

'धनं लभेत दानेन, मौनेनाज्ञां विशाकयते।

उपभोगांश्च तपसा, ब्रह्मचर्येण जीवितम्।।'

अर्थात्-दान देने से धन मिलता है, मौन रहने से आज्ञा देने की शक्ति प्राप्त होती है, तप से नाना प्रकार के उपभोग प्राप्त होते है और ब्रह्मचर्य से दीर्घ जीवन का लाभ होता है। आयुर्वेद के आचार्य भी कहते हैं- **'ब्रह्मचर्यम् आयुष्कराणाम्'** अर्थात् ब्रह्मचर्य साधना दीर्घायुष्य का आधार है। पातंजल योगसूत्र में भी कहा गया है- **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।'** अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचर्य मे प्रतिष्ठित होने पर ब्रह्मचारी को वीर्य का लाभ होता है।

वीर्य लाभ क्या ? आयुर्वेद के अनुसार हम जो कुछ खाते-पीते है उससे रस बनता

है। रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से भेद, भेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र। यही शुक्र वीर्य तथा रज कहलाता है। जब स्त्री पुरुष को रजवीर्य का संयोग होता है। तब दूसरे पुरुष या स्त्री के रूप की रचना हो जाती है। इस वीर्य का ऊर्ध्वाकिर्षण करने की विद्या केवल योग में है। यही वीर्य ब्रह्मचर्य साधना से अष्टमी धातु **'ओज'** बनता है। ओज से आगे चलकर तेज बनता है। तेज से बिन्दु नाद ब्रह्म तथा शब्द ब्रह्म, उससे परब्रह्म नारायण का रूपान्तर होता है। इसी कारण वीर्य को ही ब्रह्म कहा गया है। यथा कठोपनिषदमें।

'तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिल्लो काः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन।। कठ०।।

अर्थात्- वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते है सब लोक उसी के आश्रय में है, उसके बाहर कोई नही जा सकता। वीर्यरक्षा से ओज नामक आठवी धातु का निर्माण होता है। विषय वासना युक्त मन के द्वारा वीर्य का क्षय होने पर व्यक्ति निस्तेज हो जाता है। ऐसा व्यक्ति योग साधना का अधिकारी नहीं है। आजकल सुलफा, भाँग, शराब, चरस का सेवन कर अण्डा माँस का आहार रखते हुए लोग योगी बनना चाहते है। एलोपैथी के अज्ञानी डाक्टर भी कहा करते है कि हस्तमैथुन, स्वप्नदोष या स्त्री संसर्ग रू वीर्य शरीर से बाहर निकालना कोई हानि नही करता। उन्हें हमारे ऋषियों का योग विज्ञान का पता ही नही कि वीर्यरक्षा से नर से नारायण बना जा सकता है।

स्वामी शंकरानन्द ने वीर्यरक्षा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है–

'अतिसारो यथा नृणां सर्वतेजोपहारकः।
रेतस्तेज निर्गमस्तद्वद् बलवीर्यापहारकः।।
यथेक्षुदण्डो निःसारः पीडितस्तद्वदेव हि।
पुमान भवति निःसारो रेतसो हि विनिर्गमात्।।

जैसे अतिसार (Dysentory) दस्त शरीर के सारे तेज को नष्ट कर देता है, वैसे ही वीर्य का स्खलन बल और ओज का विनाशक है। जैसे कोल्हू से पेरने पर गन्ना निःसार हो जाता है, वैसे ही रेतः स्खलन होने पर मनुष्य निःसार हो जाता है। आयुर्वेद के ग्रन्थ अष्टांगहृदय मे वीर्य रक्षा को महत्व पूर्ण, आयुष्य रक्षक, शरीर के अन्दर बल, तथा हृदय को जीवन के उल्लास एवं जीवनी शक्ति से भरने वाला माना है।

'ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।'
'ओजो वृद्धौ हि देहस्य तुष्टि पुष्टि बलोदयः।
हृदयस्थमपि व्यापि तत्परं जीविता स्पदम्।।

जिस प्रकार समस्त वृत्तियाँ बहिर्मुखता से उलटकर अन्तर्मुखी होने पर धारणा, ध्यान

और समाधि के द्वारा जीवन के तेजस्वरूप परब्रह्म में स्थिति पाकर साधक कृत-कृत्य हो जाता है, वैसे ही वीर्य को योग क्रियाओं (प्राणायाम, आसन, अमरौली, बज्रौली, खेचरी, शाम्भवी आदि) द्वारा सर्वशरीर में व्याप्त कर तेजोमय बनाकर तेजस्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। मनुष्य शरीर के अन्दर वृषण ग्रन्थियों में दो स्राव हुआ करते हैं- अन्तः-स्राव तथा बहिःस्राव। यदि बहिःस्राव सन्तानोत्पत्ति का कारक है। जब बहिःस्राव को रोककर अन्तःस्राव जिसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी-(TESTOSTERON) कहते हैं विकसित किया जाता है तो वह योगी को साधना में निरन्तर उत्साहित रखता है यदि मनुष्य दीर्घकाल तक मैथुन करता रहता है तो अन्तःस्राव ग्रन्थियाँ क्षीण हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप मन में उत्साह नहीं रहता, इच्छाशक्ति निर्बल हो जाती है। एकाग्रता प्राप्त नहीं होती। मन भी बहिर्मुखी होकर विषयाकार वृत्तियों का आकार ग्रहण कर लेता है। यदि दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य की रक्षा की जाय तो अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ बढ़ेगी तथा शरीर को चिरयौवन, बल तथा अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त हो सकेगी। शक्ति को सुरक्षित रखने वाला व्यक्ति साधारण मनुष्य नहीं रह जाता अपितु देवतुल्य हो जाता है। महाराज मनु ब्रह्मचर्य को सबसे बड़ा तप कहते हैं। जो ऊर्ध्वरेता है वह साक्षात देव ही है-

'न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं परं तपः।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानवः।।

जो ऊर्ध्वरेता हो जाता है। उसके मन में शुकदेव जी की तरह स्त्री पुरुष का भेद नहीं रहता। आत्म तत्व में रमण करने के कारण स्त्री सम्बन्धी काम वासना उसे स्पर्श नहीं करती। आदि शंकराचार्य ने ऊर्ध्वरेता को ही वास्तविक ब्रह्मचारी माना है। वे प्रश्न करते हैं- ब्रह्मचारी किसे कहा जाय ? उसका उत्तर देते हैं- 'जो अस्खलित ऊर्ध्वरेता होता है वही। **'को ब्रह्मचर्यान स्यात् यश्चाखिलोर्ध्वरेतस्कः''** जिन धर्म विवेक में ब्रह्मचारी को वेदपाठी से भी श्रेष्ठ माना गया है। हठयोग प्रदीपिका में तो यहाँ तक कहा गया है कि जब तक अमृत रूप शुक्र तेज बिन्दु के रूप में मनुष्य शरीर में तैजस मन और तैजस चित्त के रूप में विद्यमान है तब तक काल का कोई भय नहीं है। बिन्दु का पात ही मृत्यु है और बिन्दु का धारण करना ही जीवन है।

'मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।
यावद्बिन्दुः स्थिरो देहे ताव त्कालभयं कुतः।। हठयोग प्र०।।

भगवान सदाशिव बिन्दु को सभी सिद्धियों का आधार मानते हैं। संसार में ऐसी कौन-सी सिद्धि है जो ब्रह्मचारी को प्राप्त न हो सके ? भगवान बिन्दुरक्षा के बल पर इस लोक का पालन करने की सामर्थ्य रखते हैं।-

'सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले।'

इसलिये ब्रह्मचर्य व्रत सर्वश्रेष्ठ व्रत है। ब्रह्मचर्य व्रत का पालनकर्ता पूज्यजनों का भी पूज्य हो जाता है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धर्मप्रद, यशोवर्द्धक, दीर्घायुप्रद, इहलोक और परलोक में रसायन और शरीर मन की निर्मलता देने वालों में सर्वश्रेष्ठ है।

आज टी. वी., रेडियो, सिनेमा तथा कामोद्दीपक साहित्य ने भारत के महान ऋषियों की सन्तानों को पतन के गर्त में धकेल दिया है। उन्हें अधिक से अधिक इन्द्रियों की गुलामी चाहिये। बालक-बालिकाएँ असमय में ही निचोड़े हुए नीबू की तरह निःसार हो रहे है। थोड़ी सह आपत्ति में ही उनकी सहन-शक्ति जवाब दे जाती है। इच्छाओं के घोड़े तो हर समय दौड़ते रहते है। किन्तु इच्छा शक्ति की कमी से आत्म संयम नही कर पाते। बुराइयों की ओर फिसलते देर नहीं लगती। अपराध जगत की ओर आज का नेता और नौजवान अन्धा होकर भागा जा रहा है। हमारे देश का अधिकांश नेता दुराचारी कामी और विलासी है जिससे जनता की किसी प्रकार भी रक्षा नहीं कर पा रहा। विद्यालयों में शिक्षक भी दुराचार एवं दुर्व्यसनों के शिकार होते जा रहे हैं। इनकी चारित्रिक दुर्बलताओं ने उन्हें निस्तेज बना दिया है। छात्र उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते। अनुशासनहीनता का सर्वत्र बोलबाला है। इन सबका एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य व्रत की कमी है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्रह्मचर्य और तप के बल से राजा राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ होता है। आचार्य ब्रह्मचर्य के द्वारा ही कन्या सुयोग्य पति प्राप्तकर तेजस्वी सन्तान राष्ट्र को समर्पित करती है तथा ब्रह्मचर्य से देवगण मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं।

'**ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। आचार्योब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणम् इच्छते। ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।** ब्रह्मचर्य के बिना कामसुख प्राप्त नहीं हो पाता। ईश्वर भक्ति के लिये ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा आधार है। पर तिय मात्र समान का भाव जब तक नहीं आयगा, मन काम वासना से भरा रहेगा। मन में काम रहते हुए ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। छात्र की स्मरणशक्ति ब्रह्मचर्य साधना से ही समृद्ध बनती है। आयु, बल, तेज, प्रज्ञा, उत्साह, दृढ़ संकल्प, लक्ष्मी, महायश, पुण्य तथा ईश्वर भक्ति ये सब ब्रह्मचर्य से ही सम्भव है।

ब्रह्मचर्य साधना कैसे?

हठयोग प्रदीपिका में उल्लेख है कि मनुष्य का शुक्र (वीर्य) मन के अधीन है। जीवन शुक्र के अधीन है। अतः प्रयत्नपूर्वक शुक्र और मन दोनों का रक्षण करना चाहिये।

"चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रयत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः।" हठयोग प्रदीपिका।।

जिनका मन दुर्बल है जो शील रहित है, पाप परायण है, इन्द्रियों की गुलामी करने में लगे रहते है, ऐसे लोग ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते। ऐसे लोगों को ब्रह्मचारी कहना भी पाप है।

'कामचारी तु कामेन य इन्द्रिय सुखे रतः।
ब्रह्मचारी सदैवैष य इन्द्रियजये रतः।। महाभारत

ब्रह्मचारी को जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। इन्द्रियों में भी रसना इन्द्रिय सबसे अधिक बलवान है। जिसने अपनी जीभ को जीत लिया उसने शेष इन्द्रियों को भी जीत लिया। जो हर समय रबड़ी, रसगुल्ले और चटपटे पदार्थ खाता रहता है, उसका मन एकाग्र बना रहे, यह असम्भव है। तुलसीदास जी कहते है-

'घास पात जो खात है उन्हें सतावत काम।
हलुआ पूड़ी नित छकैं उनकी जानहिं राम।।

महायोगी भर्तृहरि जी महाराज श्रृंगार शतक मे लिखते है-

विश्वामित्र पराशर प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशिनाः।
तेऽपि स्त्री मुख पंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवाः।
तेषमिन्द्रिय निग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत्सागरे।।

अर्थात्–वायु, जल व पत्ते सेवन करने वाले विश्वामित्र पराशर आदि जैसे ऋषि भी स्त्रियों का सुन्दर मुख कमल देखकर कामासक्त हो गये। फिर चावल, खीर, घी, दूध, दही इनसे युक्त भोजन सेवन करने वाले मनुष्यों का स्त्रियों को देखकर मनो निग्रह (इन्द्रिय निग्रह) हो सके तो विन्ध्य पर्वत के समुद्र में तैरने के समान महान आश्चर्य हो जायेगा।

स्त्री में काम वासना पुरुष की अपेक्षा आठगुनी अधिक होती है– ऐसा आचार्य चाणक्य का मत है। अतः पद्मपुराण मे उसे जलते हुए अंगारे के समान कहा गया है। पुरुष जमे हुए घी के घड़े के समान है। इसलिए योग साधक को चाहिये कि वह स्त्रियों का और स्त्रियों के प्रेमियों का संग न करे। क्योंकि उनका संग मन में कामवृत्ति बढ़ाता है। अवधूत गीता में उल्लेख है-

'अग्नि कुण्ड समा नारी घृत कुम्भ समो नरः।
संसर्गेण विलीयेत तस्मात्तां परिवर्जयेत्।।

जैसे घी आग के सामीप्य से पिघलता है, उसी प्रकार मनुष्य का मन स्त्री संग से चंचल बनता है। साधक को आचार्य शंकर का आदेश है कि **'न स्पृशेत् स्त्री दारवीमपि'** हाड़-मांस की तो बात ही क्या लकड़ी की बनी हुई स्त्री की आकृति का भी ब्रह्मचारी और सन्यासी को स्पर्श तक नही करना चाहिये क्योंकि आकृति में मन जाने पर मन मे विकृति (कामविकार) आती है। आचार्य मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि साधक माता, बहिन अथवा कन्या के साथ भी एकान्त में कदापि न रहे, क्योंकि बलवान इन्द्रियाँ

विद्वान को भी अपनी ओर खींचकर पाप करवा देती है।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।

बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।। **मनु**

सांगधर पद्धति में ऐसा उल्लेख है कि निर्जन स्थान में जितेन्द्रिय पुरुष को माता को भी अलग रखना चाहिये। क्योंकि विष्णु पुराण में एक कथा आती है कि भगवान शंकर ने कामदेव को भस्मकर कर दिया। वही कामदेव रुक्मिणी के उदर से श्रीकृष्ण के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। शम्बर राक्षस के कोई पुत्र नहीं था मायावती उसकी पत्नी थी। शम्बर पुत्रहीन था। मायावती पूर्वजन्म में कामदेव की पत्नी रति थी, जो इस जन्म में शम्बर की पत्नी बनी। शम्बर प्रसूतिकागार से प्रद्युम्न को जन्म के सातवें दिन हरणकर ले आया और मायावती को पुत्र करके दे दिया। पूर्वजन्म की वासना के कारण वह उसी प्रद्युम्न को रूप लावण्य को देखकर आसक्त हो गयी जिसे पुत्रवत् पाला था। प्रद्युम्न ने इस पर मायावती से प्रश्न किया-**'मातृभावं व्यतिक्रम्य किमेवं वर्तसेऽन्यथा।'** (विष्णुपर्व) अर्थात् माँ का भाव छोड़कर पत्नी का भाव क्यों कर रही हो ? मायावती ने उत्तर दिया कि तुम्हारा हमारा पूर्वजन्म का जो सम्बन्ध था, वह मुझे विवस कर रहा है। **'नारिनयनशर काहि न लागा।'** स्त्रियों के कटाक्षों से जब विवेकी विश्वामित्र जैसे तपस्या छोड़ मेनका के चक्कर में पड़ सकते हैं तो साधारण पुरुष कैसे सुरक्षित रह सकते हैं।

आज समाज में सर्वत्र कामक्रीड़ा का वातावरण व्याप्त हो रहा है। हर चीज के विज्ञापन में दूरदर्शन, रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं में नग्न और अश्लील चित्र और संवादों की भरमार है। ऐसे वातावरण में आज का नौजवान योगसाधना कैसे कर पायेगा ? यम-नियमों के पालन की वृत्ति कैसे पैदा होगी। काका हाथरसी ने हास्य व्यंग्य में कहा था 'बालकराम ब्रह्मचारी जी के बारह बच्चे'। त्यागी राम सन्यासी गृहस्थों से भी अधिक भोग और ऐश्वर्य पूर्ण वातानुकूलित बंगलों में रह रहे हैं। ऐसा जीवन जीने वालों में बाहरी चटक-मटक तथा चकाचौंध भले ही हो योग विभूतियों का, अन्दर की रूहानी ताकत का सर्वथा अभाव देखा जाता है। ब्रह्मचर्य के बिना योग मिथ्या है। महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मचर्य की परिभाषा दी है उस पर कितने खरे उतर सकते हैं।

'कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।

सर्वत्र मैथुनत्यागं **ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।।** **(वशिष्ट संहिता)**

अर्थात्- शरीर, मन और वाणी- इन तीनों से सर्व अवस्थाओं में सदा सर्वदा सर्वत्र मैथुन त्याग को वास्तविक ब्रह्मचर्य कहते हैं केवल मैथुन त्याग करना भर ब्रह्मचर्य साधना नहीं है। अपितु पुरुषों के द्वारा स्त्रियों का तथा स्त्रियों के द्वारा पुरुषों का स्मरण,

गुणगान करना, क्रीड़ा करना, परस्पर कामुक दृष्टि से देखना, एकान्त में गप्प करना- इन आठ अंगों को मैथुन की भाँति ही गर्हित तथा इनसे बचने को ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। देखिये दक्षस्मृति का वचन-

'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गम् प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्य मेत देवाष्ट लक्षणम्।।

शब्द स्पर्शरूप रस गन्ध के प्रति मन की आसक्ति न होना, ब्रह्म ध्यान में आनन्द का अनुभव करना, गुरुदेव की सेवा में अपने को निछावर कर देना आदि वास्तविक ब्रह्मचर्य साधना है।

इसके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में भी ब्रह्मचर्य साधना हो सकती है। सद्गृहस्थ नैष्ठिक ब्रह्मचारी होता है। श्री सद्गुरु जी महाराज अपने श्रीमुख से कहा करते थे कि पति पत्नी एकमन दो शरीर और एक आत्मा बनकर जीवन यापन करें तो उनके अन्दर दिव्य शक्तियों का आविर्भाव होगा। उनके जीवन में कामविकार नहीं होगा। पच्चीस वर्ष तक शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य की पूर्ण साधना कर पूर्ण बलवान और शक्तिसम्पन्न होकर स्त्री पुरुष पति-पत्नी बनेंगे तो उनकी सन्तान भी योगी बन सकेगी। केवल देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण से मुक्त होने के लिए ऋतुकाल में ऋतुकाल की प्रथम चार रात्रियाँ, चतुर्थी, अष्टमी, पूर्णिमा, अमावस्या, स्वजन्मनक्षत्र तथा ग्यारहवीं एवं तेरहवीं रात्रि एवं पर्वकालों को छोड़कर सन्तान के लिए पत्नी से सहवास करने वाला गृहस्थाश्रम का शास्त्रोक्त रीति से पालन करते हुए यज्ञ से देवऋण से ब्रह्मचर्य साधना से ऋषिऋण से तथा सुयोग्य धर्मपरायण सन्तान को जन्म देकर पितृऋण से मुक्ति प्राप्त की थी। आपस्तम्भधर्मसूत्र में कहा गया है कि 'जायापत्योर्न विभागो जायते' अर्थात् मृत्यु को छोड़कर पति पत्नी का कभी वियोग नहीं होता! अर्द्धनारीश्वर भगवान शंकर के रूप से तलाक लेने वालों को शिक्षा लेकर अपने घर को ऐसा दिव्य बनाना चाहिए जहाँ योगभ्रष्ट आत्मायें जन्म लेकर फिर योग साधना कर सकें।

विवाहो न विलासार्थः प्रजार्थमेव केवलः।
तेजो बुद्धि बलध्वंशो विलासात्प्रभवेत् खलु।

अर्थात्-विवाह कामोपभोग के लिए नहीं अपितु उत्कृष्ट संतान उत्पन्न कर पितृण से मुक्त होने के लिए है। कामसुख के चक्कर में तेज बुद्धि और बल का नाश हो जाता हैं केवल धन के लालच में विवाह करना ठीक नहीं है। दस विवाह वर्ज्य माने गये है संस्कार रहित कुल, पुरुष सन्तान हीन, विद्याभ्यास शून्य, शरीर पर लम्बे बाल, बवासीर रोग, टी.वी. युक्त, महारोग पीड़ित, मिर्गी, सफेद दाग, कोढ़युक्त स्त्री, वर भी सगोत्र न हो। माता का सपिण्ड भी न हो। युवक, बुद्धिमान तथा शील सदाचार युक्त हो।

भारतीय संस्कृति एवं योग

पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

समूचे विश्व में भारतीय संस्कृति को महत्ता अन्यान्य संस्कृतियों की अपेक्षा सविशेष एवं अतुलनीय मानी जाती है। भारतीय संस्कृति वैदिक संस्कृति है। वेद ही इसका मूल है वेद अनादि है अत: यह भी अनादि है। 'वेद' का अर्थ है-ज्ञान । अत: वेद हमें सत्य का ज्ञान कराते हैं। उस अनन्त, अखण्ड, अव्यक्त परम ज्योतिस्वरूप तथा सर्वथा चिन्मय परमात्मा सर्वव्याप्ति का अनुभव ही सत्य का ज्ञान है और इसे ही दूसरे शब्दों मे योग कहा जाता है।

योग हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर असत्य से सत्य की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर चलना सिखाता है। यही भारतीय संस्कृति एवं वैदिक वाङ्गमय का मुख्य उद्देश्य है। हमारे पूर्वज अपनी दैनिक उपासनामें प्रभु से यह प्रार्थना करते आये है-

"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय।"

अर्थात् हे प्रभु! मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ। भारतीय संस्कृति किसी सम्प्रदाय विशेष का मंगलचिन्तन नहीं करती, बल्कि जन-जनके कल्याण की अपेक्षा रखती है।

सर्वे भवन्तु सुखिन:,
सर्वे सन्तु निरामया: ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु:,
मा कश्चिद् दु:खभाक् भवेत् ।

सभी लोग सुखी रहें, सब लोग निरोग -हो जायें, सभी कल्याण देखें, किसी को लेशमात्र भी दु:ख न हो। यही भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र है।

भारतीय संस्कृति अनेकरूपा है। 'विविधता में एकरूपता और अनेकता में एकता' यही भारतीय संस्कृति की विशेषता है। हमारी संस्कृति में अनेकों पन्थ एवं सम्प्रदाय है, किन्तु लक्ष सबका एक अर्थात्-आत्म-साक्षात्कार ही है। चाहे कोई धर्म हो, चाहे कोई सम्प्रदाय हो, उनकी साध ना अथवा उपासना पद्धति किसी भी रूप में क्यों न हो, किन्तु **"सर्वे पदा: हस्तिपदे नमिग्ना:"** अर्थात्-सभी पैर हाथी के पैर में समा जाते है, इस सिद्धान्त के अनुसार वे अन्त में उसी अनन्त योग में विलीन हो जाते है।

भारतीय संस्कृति परोपकार, त्याग एवं कर्तव्य-परायणता की सजीव मूर्ति है। महाराजा शिवि की परोपकारिता, महर्षि

दधीचि का परोपकार हेतु आत्म-बलिदान, राजा हरिश्चन्द्र की कर्तव्यपरायणता तथा एकलव्य की गुरूभक्ति इस बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं। अपनी इस आदर्श संस्कृति के बल पर ही भारत अनादिकाल से एक आध्यात्मिक भाव संपन्न देश रहा है तथा यह समस्त जगत का आध्यात्मिक गुरू रहा है। उसने स्वंय ही प्रकाश में रहना नही सीखा, प्रत्युत वह दूसरों को प्रकाश देता आया है। भारतीय संस्कृति **'वसुधैवकुटुम्बकम्'** के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करती है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा धर्मशास्त्र प्राणीमात्र के कल्याण की भावना से ओतप्रोत है। यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र हमें यही शिक्षा देता है कि हम प्राणिमात्र को मित्र दृष्टि से देखें। **यथा-मित्रस्य चक्षुषा मा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम। मित्रस्याहम् चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुष समीक्षामहे।**

श्रीमद्भागवदगीता में जगदात्मा श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से इस बात की पुष्टि करते हैं-

सर्वभूतेषु चात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शिनः।।

अर्थात् समदर्शी योगी सब प्राणियों को अपने में तथा अपने में सब प्राणियों को देखता है।

भारतीय दर्शन हमें बार-बार यही प्रेरणा देता है कि हम दिव्य योगमय जीवन अपनाकर आत्मसाक्षात्कार का प्रयास करें। जैसे-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत।
(कठोपनिषद 14)

अर्थात्-अरे मनुष्यों ! तुम अज्ञानरूपी निद्रा में सोये मत रहो। अब भी समय है। शीघ्र सावधान हो जाओ और महापुरुषों की शरण में जाकर उनके उपदेश से आत्मकल्याण का मार्ग अपनाओ।

भारतीय संस्कृति योग से अनुप्राणित है। वह हमें बारम्बार सचेत करती है, कि हम काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य तथा राग-द्वेष आदि विकारों पर विजय पाकर अपनी सोई शक्ति को जाग्रत करें। हमारे धर्म ग्रन्थ कहते हैं कि जीवमात्र ईश्वर का अंश है, किन्तु माया के वश में होने से वह बद्ध है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायावश भयउ गुसाईं।
बन्ध्यो कीट मरकट की नाईं।।
(रामचरितमानस उ० का०)

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह यम-नियमों का पालन करते हुए अभ्यास तथा वैराग्यरूप उपायों से मनोनिग्रह करके आत्मसाक्षात्कर का लाभ उठायें। योगशास्त्र के आधारभूत इन सिद्धान्तों का रामचरितमानस में बड़े ही सुन्दर ढंग से सरल भाषा में

वर्णन किया गया है। जैसे-

परमधर्ममय पय दुहि भाई।
अवटै अनल अकाम बनाई।।
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावै।
धृति सम जावन देइ जमावै।।
मुदिता मथै विचार मथानी।
दम अधार रजु सत्य सुबानी।।
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता।
विमल विराग सुभग सुपुनीता।।
योगअग्नि करि प्रगट तब,
कम शुभाशुभ लाइ।
बुद्धि रिसावै ज्ञानघृत,
ममता मल जरि जाइ।।
तब विज्ञान निरूपिणी,
बुद्धि विशद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़,
ममता दिअरि बनाइ।।
सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीपशिखा सोइ परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुखप्रकाशा।
तब भवमूल भेद भ्रमनाशा।।

हे भाई ! परमधर्मरूपी दूध को दुह के निष्कामनारूपी अग्नि में औटावै। फिर संतोष और क्षमारूपी हवा से उसे ठण्डा करे और धैर्य का जामन देकर उसे जमावै।

तब प्रसन्नतारूपी हाथी द्वारा विचाररूपी मथानी से उसे मथे। इन्द्रिय दमन उसका आधार हो और सत्यवाणी उसकी डोरी हो। इस प्रकार मथकर वैराग्यरूपी सुन्दर पवित्र मक्खन निकाल ले।

फिर योगअग्नि प्रकट करके शुभ-अशुभ कर्मरूपी लकड़ी जलाकर बुद्धि से ठंडाकर ज्ञानरूपी घी निकाल ले और जब ममतारूपी मैल जल जाये तब ज्ञान का निरूपण करने वाली बुद्धि निर्मल घी को पाकर चित्तरूपी दीपक में भरकर ममतारूपी दीवट बनाकर उस पर रक्खे।

"सोहमस्मि" यह जो अखण्डित वृत्ति है सो अत्यन्त प्रचण्ड दीपशिखा (ज्योति) है। तब आत्मा का ज्ञान होने से सुख अपने आप प्रकाशित होता है तब संसार की जड़ भेदबुद्धि तथा भ्रम का नाश हो जाता है।

हमारे दर्शनशास्त्र इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्मांड में है, क्योंकि यह त्रिविध, प्रकृति सत्व, रज, तम तथा पंचमहाभूत-पृथ्वी, जल, तेज एवं आकाश से व्याप्त है। हमारा पिण्डरूप देह भी इन्हीं तत्वों का विकार है। यह देह पंचमहाभूतों से बना है और इन महाभूतों की पंचतन्मात्रायें ही अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही हमारी इन्द्रियों के अनुभव के विषय हैं। गीता तथा कठोपनिषद् में इसी बात को निम्न प्रकार से समझाया गया है-

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था,
ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिः,
बुद्धेरात्मा महान परः।।
महतः परमव्यक्तम
व्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषात्र परं किंचित्सा,
काष्ठा सा परा गतिः।।
(कठोपनिषद्)

अर्थात् इन्द्रियों से बलवान विषय है। वे साधक की इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते है। अतः साधक को चाहिए कि वह इन्द्रियों को विषयों से दूर रखे, विषयों से बलवान मन है। मनसे भी बलवान बुद्धि है। अतः बुद्धि के द्वारा विचार करके मन को राग-द्वेष रहित बनाकर अपने वश मे कर लेना चाहिए। बुद्धि से भी महान आत्मा बलवान है। आत्मा से भी बलवान ईश्वर की अव्यक्त माया है और उससे भी बलवान इन सबके स्वामी परम पुरुष परमेश्वर है, जो कि गुणातीत है और बल, ज्ञान एवं क्रिया शक्ति के आधार है।

दूसरे शब्दों मे यह समस्त जगत ईश्वर की अव्यक्त माया से ही उत्पन्न हुआ है और ब्रह्मांड मे जो-जो तत्त्व है वे सभी सूक्ष्म रूप से देह मे विद्यमान है।

मन्त्रराज गायत्री मन्त्र मे सात व्याहृतियाँ है, जिन्हे बाह्य-जगत मे सप्त लोक कहा जाता है। योगशास्त्र के अनुसार वे सप्तलोक मनुष्य के शरीर स्थित षट्चक्र है। जिन्हें बेधती हुई कुण्डलिनी शक्ति सहस्त्रार (ब्रह्म-चक्र) मे पहुँचती है और वहाँ अमृतपान करके जीव को जीवन्मुक्त कर देती है।

शरीर मे सप्तलोकों की स्थिति तथा षटचक्रों का स्थान निम्न प्रकार से है-

ये रहे शास्त्रोक्त योगसिद्धान्त। अब व्यवहार मे योग का प्रभाव देखिये-

सप्तलोक	षटचक्र	पंचमहाभूत एवं आत्म तत्त्व	गायत्री मन्त्र की व्याहृतियां	चक्रों के अधिष्ठातादेव
1- भू लोक	मूलाधार	पृथ्वी तत्त्व	ॐ भूः	गणेश
2- भुवः लोक	स्वाधिष्ठान	जल तत्त्व	ॐ भुवः	ब्रह्मा
3- स्वर्ग लोक	मणिपूरक	अग्नि तत्त्व	ॐ स्वः	विष्णु
4- महः लोक	अनाहत	वायु तत्त्व	ॐ महः	रुद्र अथवा काली
5- जन लोक	विशुद्ध	आकाश तत्त्व	ॐ जनः	सदासिव
6- तप लोक	आज्ञा	आत्म तत्त्व	ॐ तपः	गुरुदेव
7- सत्यलोक	ब्रह्मलोक (सहस्त्रार)	ब्रह्म तत्त्व	ॐ सत्यं	गुरुदेव

हिन्दुओं का प्रत्येक मांगलिक कार्य गणेश-पूजन से आरम्भ होता है। क्योंकि गणेशजी स्वयं ही योगी के प्रतीक है। उनकी लम्बी सूंड़ प्राणायाम की ओर संकेत करती

है। लम्बोदर (बड़ा पेट) मितभाषी बनने की प्रेरणा देता है छोटी आँखें तत्त्वदर्शी बनने का उपदेश देती है। उनके लम्बे कान बहुश्रुत बनने (ज्ञानार्जन करने) की शिक्षा देते है और उनका वाहन मूषक चित्तवृत्तियों पर संयम करने का संकेत करता है।

भारतीय वेशभूषा, रीति-रिवाज तथा आहार-विहार योग से पूर्णतया प्रभावित है। श्वेत रंग सतोगुण का प्रतीक है। अतः सतोगुण की अभिवृद्धि के लिए हमारे पूर्वज सफेद वस्त्र को महत्व देते आये है। कोपीन धारण करने से ब्रह्मचर्य के पालन में सहायता तो मिलती ही है, साथ ही और भी बहुत से लाभ है, कोपीन धारण करने से कुण्डलिनी-शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है, इससे गृहिणी नाड़ी यथार्थ स्थिति में रहती है।

पुरुषों की पगड़ी तथा स्त्रियों का शिर स्त्राण-वस्त्र ब्रह्मांड (सहस्रार) को गरमी-सरदी से बचाये रखता है।

शिखासूत्र ब्रह्मचक्र का बोध कराता है। यज्ञोपवीत यम-नियमों का पालन करने का संकेत करता है उसे ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र-सत्व, रज और तम इन तीन गुणों के प्रतीक है और निर्गुण ब्रह्म का बोध कराते हुए गुणातीत बनने की प्रेरणा देते है। यज्ञोपवीत के छः तन्तु शरीरस्थ षड्रिपुओं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य पर विजय पाने की प्रतिज्ञा करवाते है।

हिन्दुओं में तिलक लगाने की प्रथा अनादि काल से चली आई है। तिलक अथवा रोली का टीका माथे पर आज्ञाचक्र के स्थान पर ही लगाया जाता है, क्योंकि आज्ञाचक्र ही गुरुदेव का स्थान है। और वहीं श्री सदाशिव का वास है। अतः चन्दन लगाने का अभिप्राय स्वयं को चन्दन लगाने से नहीं है, बल्कि ईश्वर की प्रसन्नता के लिए अपने माध्यम से उसी सर्वशक्तिमान पर चन्दन लगाया जाता है।

स्त्रियां सिंदूर को सौभाग्य का सूचक मानती हैं और अपने पति की दीर्घायु की कामना से ही उसे धारण करती हैं। इसका एकमात्र कारण है, कि भारतीय नारी पति को ही अपना गुरु एवं सर्वस्व मानती है और उसकी उपासना हेतु आज्ञाचक्र पर सिंदूर धारण करती है।

स्त्रियों के कर्णफूल और पुरुषों के कुण्डल योग से विशेष सम्बन्ध रखते है, क्योंकि कान ही वह इन्द्रिय है, जिससे साधक के अन्दर गुरु शक्ति का संचार होता है। कान से ही मंत्रदीक्षा दी जाती है। कान का आज्ञाचक्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि सुषुम्ना नाड़ी भी कर्णेन्द्रिय के निकट है नामकरण संस्कार के समय बालक के कान में नामोच्चार करके ही उसे भविष्य में उस नाम से पुकारा जाता है यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर बालक का

कर्णवेध संस्कार भी किया जाता है। उस अवसर पर पुरोहित द्वारा गायत्री मन्त्र की दीक्षा कानों मे ही दी जाती है। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार के प्रायश्चित्त के लिए कान पकड़ने की प्रथा हमारे देश मे आज भी विद्यमान है। मुसलमान लोग कान छूकर ही तौबा किया करते हैं। कान शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है एवं उसका योग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी कारण योगिराज भगवान शंकर भी कानों मे कुण्डल धारण किये रहते है।

भारतीयो मे व्रत रखने का काफी प्रचलन है, जो कि अन्तःकरण की शुद्धि के लिए अनिवार्य ही है।

भारतीय संस्कृति आहार-शुद्धि को विशेष महत्व देती है, क्योंकि आहार-शुद्धि के बिना योगमार्ग मे प्रगति असम्भव है। योगशास्त्र का कथन है-

"आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः, स्मृतिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।"

भारतीय जन-जीवन योग से पूरी तरह प्रभावित है। प्रत्येक प्रकार के मांगलिक कार्यों मे या मन्दिर मे शंख, घड़ियाल तथा नगाड़े बजाने का उद्देश्य अपने इष्ट का आह्वान तथा नादब्रह्म अभिव्यक्ति है।

भारत मे प्रचलित तरह-तरह के शकुन एवं अपशकुन योगविद्या का ही समर्थन करते है।

सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव की उपासना प्रकारान्तर से योग-साधना ही है, क्योंकि इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना को क्रमशः सूर्य चन्द्रमा एवं अग्नि नाम से भी पुकारा जाता है।

भारतीय जन-जीवन मे तीर्थों का बड़ा महत्व है। हिन्दुओं का विश्वास है कि प्रयागराज (त्रिवेणी संगम) मे स्नान करने से मोक्षलाभ होता है।

योगशास्त्र के अनुसार भ्रूमध्य मे स्थित आज्ञाचक्र त्रिवेणी का ही प्रतीक है, क्योंकि वहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती रूप तीन नाड़ियों-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना का संगम है। अतः आज्ञाचक्र पर संयम कर उसे सिद्ध कर लेने से मनुष्य निस्सन्देह जीवन्मुक्त हो जाता है।

तीर्थ क्या है ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। उत्तर स्पष्ट है, कि सिद्धसेवित स्थान ही तीर्थ कहलाते है, क्योंकि सिद्धयोगी जिस स्थान पर थोड़े समय के लिए भी चले जाते है उसे अपनी पावन चरणरज से पुनीत कर देते है। वे अपनी साधना से उन स्थानो पर दिव्य परमाणुओं का संचार कर देते है। सिद्धो के साधना-स्थल या तो गंगा-यमुना के तट रहे है या हिमालय के हिमाच्छादित दुर्गम पर्वत शिखर, अतः कैलाश, मानसरोवर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, पशुपतिनाथ तथा द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वरम्, हरिद्वार,

काशी प्रयाग एवं मथुरा आदि पुनीत स्थानों की गणना भारत के प्रमुख तीर्थों में की जाती है।

हमारे विविध त्यौहार एवं मेले भी धार्मिक भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक प्रकार के उत्सव की कोई न कोई पृष्ठभूमि अवश्य होती है, जो कि नैतिकता को बल देती है।

उदाहरणार्थ–विजय दशमी का पर्व हमें यह शिक्षा देता है कि हम मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह चरित्रवान बनें, भरत की तरह निष्कामभाव से अपने कर्त्तव्य का पालन करें, तथा काम, क्रोध, लोभ आदि अपने रिपुओं पर विजय प्राप्त करके जन-जन का कल्याण करें। इसका यह भी अभिप्राय है कि हम आसुरी सम्पदाओं पर विजय प्राप्त करके अपने अन्तःकरणरूपी लंका पर विभीषणरूपी दैवी सम्पदाओं को प्रतिष्ठित करें।

भारतीय शिक्षण संस्थाओं में योग का प्रभाव आंशिक रूप से आज भी विद्यमान है। उदाहरणार्थ– विद्यालय में शिक्षण कार्य का आरम्भ दैनिक प्रार्थना से होता है उसके साथ-साथ राष्ट्रगीत का गायन सावधान की मुद्रा में ही मौन (मानसिक प्रार्थना) कराई जाती है तदनन्तर हाथ आगे बढ़ाकर शपथ ग्रहण कराई जाती है।

यह एक रहस्यपूर्ण बात है। सावधान का अभिप्राय मन को सावधान करने से है। सावधान की स्थिति में शरीर के सभी अंगों में समान तनाव आ जाता है मेरुदंड एवं ग्रीवा सीधी रहती है जिससे मन में एकाग्रता बनी रहती है। विद्यालय में प्रचलित विविध प्रकार के व्यायाम योगासनों से समानता रखते हैं।

मन्त्रविद्या एवं तन्त्रविद्या के क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति योग से प्रभावित है। वस्तुतः मन्त्रविद्या योग की ही देन है। योगशास्त्र में इसे मन्त्रयोग की संज्ञा दी गई है। मन्त्र एवं तन्त्रविद्या संकल्प शक्ति पर आधारित है तान्त्रिक लोग संकल्पशक्ति से बड़े-बड़े चमत्कारपूर्ण कार्य कर डालते हैं पाश्चात्य देशों में इन दिनों संकल्पशक्ति पर कई प्रकार के परीक्षण किये जा रहे हैं। इस अद्भुत शक्ति को कुछ लोग टेलीपैथी (Telepethi) भी कहने लगे हैं।

हमारी संस्कृति में संकल्पशक्ति को बहुत महत्त्व दिया है वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनमें प्रभु से प्रार्थना की गई है, कि मेरा मन शुभ संकल्पों वाला बन जाये अर्थात् किसी प्रकार का अशुभ संकल्प मेरे मन में न उठे। शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय में निम्नलिखित मन्त्र द्वारा मन की विलक्षण शक्ति का वर्णन करते हुए संकल्पों की कामना की गई है। यथा–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति,
दैवंतदुसुप्तस्य तथैवेति।
दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेक
न्तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु।।

हमारी संस्कृति पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर

विश्वास रखती है, जो कि योग शास्त्र का ही सिद्धान्त है। श्री मद्भागवदगीता मे योगेश्वर श्रीकृष्ण अपने मुखारविन्द से इस बात की पुष्टि करते है-

प्रयत्नोद्यतमानस्तु,

योगी संशुद्ध किल्विषः।

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो,

याति परां गतिम्।।

अर्थात्- अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ तथा प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर परमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार हम देखते है कि योग भारतीय संस्कृति के कण-कण मे समाया हुआ है।

हिन्दू धर्म की शाखाभुत इतर सम्प्रदायों मे भी योग का पर्याप्त प्रभाव देखने को मिलता है।

उदाहरणार्थ-जैन धर्म मे मुँह पर कपड़ा रखकर चलने की प्रथा है ऐसा वे अहिंसा धर्म का कट्टरता से पालन करने के उद्देश्य से किया करते है। अहिंसा अष्टांगयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है।

बौद्ध धर्म मे भी यम-नियमों को विशेष महत्व दिया गया है।

सिख सम्प्रदाय मे भजन तथा चिन्तन दोनो क्रियाये योग सिद्धान्तो के अनुसार है। इन लोगो मे गुरुदेव को साक्षात् ब्रह्म माना जाता है तथा उन्ही का चिन्तन (ध्यान) इस सम्प्रदाय मे प्रचलित है। सिख सम्प्रदाय मे **"सत श्री अकाल"** कहने की प्रथा है, जिसका अर्थ है, कि वह अकाल पुरुष ही सत्य है। योग दर्शन मे **'गुरु'** शब्द को ईश्वर का वाचक बताया गया है तथा उसे अकाल पुरुष की संज्ञा दी गई है। जैसे-

सः पूर्वेषामपि गुरुः,

कालेनानवच्छेदात्।

वह ब्रह्मांड नियन्ता परमेश्वर हिरण्यगर्भ आदि पिछले सभी गुरुओं का भी गुरु है, क्योंकि वह काल की हद से परे है। अर्थात् किसी भी काल मे और किसी भी स्थान मे उसका अभाव नही होता।

सूफी मत मे भी योग को महत्व दिया गया है। संत कबीर स्वयं एक उच्च कोटि के योगी थे। उनका साहित्य योग सिद्धान्तो से भरा हुआ है।

अन्य धर्मों मे भी योग का प्रभाव न्यूनाधिक रूप से विद्यमान है।

निस्सन्देह योग किसी जाति विशेष एवं सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नही रखता अपितु यह एक ऐसी पवित्र सार्वभौम विद्या है जिसे अपनाकर कोई भी व्यक्ति परम कल्याण का भागी बन सकता है।

यही भारतीय संस्कृति का आदर्श है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

किमस्ति योग :

रचनाकार : द्वारकाप्रसाद शर्मा, लखनऊ।

यथोक्तं पुरा तत्र च सन्ति बहवः, विघ्नाः प्रशस्तेऽध्वनि योगिनः सदा
के के च ते सुगदिता विशदं महर्षिणा, निजैक सूत्रे ग्रथिते ततः परम्।।

इससे पूर्व के श्लोकों में हमने योग मार्ग में आने वाले विघ्नों अथवा कन्तरायों के विषय में जानने की चेष्टा की थी। योगमार्ग के पथिक को विघ्न आया ही करते हैं। वे विघ्न क्या-क्या हैं इन सबका विशद निरूपण महर्षि पंतञ्जलि ने अपने अग्रिम सूत्र में किया है।

व्याधिः स्त्यानः संशयश्च, प्रमादालस्या कौ च द्वौ।
अविरतिः षष्ठ को विघ्नः, भ्रान्ति दर्शन-सप्तकम्।।

इन विघ्नों को महर्षि पंतञ्जलि ने इस सूत्र की रचना कर हमें बताया है। वह सूत्र है- **"व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्या विरति भ्रान्ति दर्शन लब्ध भूमिलान वस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः"।**

अलब्धभूमिकत्वञ्च, अनवस्थितत्वमेव च।
चित्त विक्षेपका एवे, अन्तराया नवोदिताः।।

इन नव (9) अन्तरायों को दूसरे और तीसरे श्लोको के द्वारा क्रमशः अभिव्यक्त किया गया है। ये अन्तराय अथवा विघ्न ही योगी के चित्त को यदा-कदा विक्षिप्त किया करते हैं। पहला है शरीर में होने वाली व्याधि। व्याधिग्रस्तता वश योग साधन सुचारू रूप से नहीं हो पाता। शरीर को स्वस्थ बनाये रखना भी एक पुनीत एवं महान् कर्तव्य होता है। जैसा कि प्रसिद्ध है 'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्'-इसके अनुसार धर्मसाधन के किसी भी कृत्य के सम्पादन में शरीर की महत्वपूर्ण भूमिका हुआ करती है। दूसरा चित्त विक्षेप का हेतु **'स्त्यान'** नामक अन्तराय है। स्त्यान से तात्पर्य है चित्त की अकर्मण्यता। कभी-कभी चित्त अकर्मण्यता की प्रवृत्ति को अपना लेता है कि इस कृत्य को नहीं करते- कल कर लेंगे इत्यादि। इससे भी अपने आपको दृढ़ निश्चय-योगी हटाने का पुरुषार्थ किया करता है। चरैवेति चरैवेति के उपनिषद् सूत्र में इसीलिये सदा-सर्वदा निज अभीष्ट लक्ष्य की ओर अग्रसर रहने के निर्देश अंकित हुए हैं। चित्त या मन तो अपने अनुकूल कार्य कराने का अभ्यस्त जहाँ हुआ वही 'सत्यान' नामक

विघ्न ने अर्थात् अकर्मण्यता ने अपना डेरा डाला और गति में बाधा आना निश्चित हुआ। अतः इस अन्तराय से भी बचना चाहिये तथा स्वयं को कर्मण्य बनाते हुए अभीष्ट लक्ष्य की ओर ही अग्रसर बनाये रखना चाहिये। तीसरा विघ्न है **'संशय'** नामक। संशयालु व्यक्ति सदा पथ भ्रष्ट रहा करता है। ऐसा करने से कुछ सिद्ध होगा या नहीं, ऐसे तर्क-वितर्क और कुतर्कों के जाल में फंसा व्यक्ति योगसाधन की सोपान नहीं चढ़ पाता। भगवद्गीता में भी **'संशयात्मा विनश्यति'** ऐसे ही प्रसंगों के अनुरूप कहा गया है। चौथा विघ्न गिनाया गया है **'प्रमाद'** नाम से। हम बहुधा सत्कृत्यों के निष्पन्नता में प्रमाद कर जाया करते हैं। उपनिषद् में अतएव **'स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्'** की चेतावनी उल्लिखित है। स्वाध्याय का अर्थ आत्मानुशील से है। इसी प्रकार योग पथारूढ़ व्यक्ति को प्रमाद नाम के इस विघ्न से सदैव सचेत रहकर निजाभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ही अग्रसर रहना चाहिये। पांचवा विघ्न **'आलस्य'** है जो स्पष्ट है। छठा विघ्न है **'अविरति'** नाम से। इसका अर्थ है अपने लक्ष्य के प्रति विरक्ति अर्थात औदासीन्य भाव का उदय होना, जिससे सावधान रहने का प्रयास करना चाहिये। सातवां विघ्न है **'भ्रान्तिदर्शन'**। एक भ्रान्त व्यक्ति की मनःस्थिति क्या हो सकती है, उसी की ओर संकेत है आठवां विघ्न महर्षिपतंजलि गिनाते है **'अलब्धभूमिकत्व'**। अर्थात् ऐसा योगी-व्यक्ति जिसे क्रमानुसार जो-जो अनुभव होने चाहिये वह न मिले और वह 'हतचेष्ट हो जाय। यह भी संकेत करता है व्यक्ति की ही त्रुटि या स्खलनादि दोष को जिससे ऐसी स्थिति बन जाना निश्चित प्राय है। नवां और अन्तिम अन्तराय है- **'अनवस्थितत्व'** अर्थात् जिस प्रकार की स्थिति होनी चाहिये उस स्थिति में न हो पाना अनवस्थित कहा जाता है वैसी स्थिति न बन पाना ही 'अनवस्थितत्व' संज्ञक अन्तराय से अभिहित होता है ये नौ प्रकार के अन्तराय योगी साधक के बाधक हुआ करते है जिनके प्रति सचेत रहना ही अभीष्ट है।

स्वभावतश्चित्त मतीवचञ्चलं, कलेवरञ्चापि हि व्याधिमन्दिरम्।
विषयानुवर्तीनि सदेन्द्रियाणि, अनुग्रहा योग धनं सुलभ्यम्।।

स्वभावतः चित्त अत्यन्त चंचल होता है और उस पर यह शरीर भी व्याधियों का घर होता है। इन्द्रियाँ सदैव विषयों की ही अनुगामिनी रहा करती है। श्री सद्गुरुदेव के अनुग्रह से ही योगरूपी धन या निधि सुलभ

हुआ करती है।

कृपा गुरुणां यदि स्यात् कदाचित्, ज्ञातव्य शेषं किं तत्र भूयात्।
हस्ते यथा धात्रीफलं विराजते, योगस्तथा भवति योगिनि भ्राजमानः।।

यदि कदाचित् श्री गुरुदेव की कृपा हो जाय तब जानने के लिये क्या शेष रह जाता है अर्थात् समस्त ज्ञातव्य का ज्ञान हो जाया करता है। जिस प्रकार हाथ में धात्री फल स्पष्ट प्रतीत होता है उसी प्रकार एक योगी में योग सुशोभित रहा करता है।

अतिरिच्य नवैतांस्तु, अन्तरायान् समग्रतः।
चित्त विक्षेप कैः सार्द्धं, पञ्चान्येऽपि हि क्लेशदाः।।

इन समस्त ऊपर कहे गये नव अन्तरायों के अतिरिक्त जो चित्त में विक्षेप उत्पन्न किया करते हैं, पाँच और भी क्लेशकारी अन्तराय हैं जो चित्त विक्षेप के उपरिवर्णित अन्तरायों के साथ ही क्लेश के हेतु बन जाया करते हैं अर्थात् अभीष्टार्थ सिद्धि के प्रति बाधक सिद्ध हुआ करते हैं।

दुःखं दौर्मनस्यञ्च, तृतीयमंग मेजनम्।
श्वास प्रश्वास द्वावेतौ, पञ्च विक्षेप सहभुवः।।

ये पाँच अन्तराय हैं-दुःख, दौर्मनस्य अंगमेजन, श्वास तथा प्रश्वास। दुःखों भी, जैसा कि सर्वविदित है, आधिभौतिक, आधिदैविक हैं, आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। दौर्मनस्य से अभिप्राय है कि किसी अन्य के प्रति बुरे मनोभावों का संजोना, अंगमेजन से तात्पर्य है शरीर में कम्पन का होना, श्वास व प्रश्वास से अभिप्राय है श्वास-प्रश्वासों की गति में वैषम्य का होना।

प्रतिषेधाय सर्वेषां, सूत्रेऽन्यस्मिन्महर्षिणा।
अभ्यास एकतत्वस्य, प्रस्तुन्तु मनीषिणा।।

उपर्युक्त पाँच क्लेशों के भी निवारणार्थ महर्षि पतंजलि द्वारा एक अन्य सूत्र का प्रणयन किया गया है और वह है तत्प्रतिषेधार्थ मेकतत्वाभ्यासः अर्थात एक तत्व का अभ्यास करना। वह मन्त्रजाप हो सकता है। किसी अंग विशेष पर ध्यान का केन्द्रित किया जाना हो सकता है। अपने इष्ट एवं आराध्य श्री सद्गुरुदेव के श्री चरणों अथवा उनके विग्रह पर ध्यान का केन्द्रीकरण अथवा अपने किसी भी इष्ट अथवा देवी के स्वरूप का चिन्तन मननादि भी हो सकता है।

चेतो विकारीणि हि यानि सन्ते, पदे पदेऽन्यानि च कारणानि।
तान्येव वारयितुमतो भणितोऽग्रसूत्रे, योगाधिरूढाय प्रबुद्ध योगिने।।

इसके अतिरिक्त मन की चपलवृत्ति के साथ-साथ इस संसार के व्यवहार में अन्य अनेक उथल-पुथल मचाने वाले भावों के कारण चित्त में विक्रिया भाव उत्पन्न हुआ करते है। हम जिस किसी भी समाज या परिवेश में अपना समय-यापन किया करते है उसमे हमारे सम्पर्क मे अनेक व्यक्तियों का सम्मिलन आदि हुआ करता है। उन व्यक्तियों के साथ विचारो के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप मानसिक प्रतिक्रियायें स्वभावतः हुआ करती है। उन्ही प्रतिक्रियाओं की परिणति सुख-दुःख हर्षामर्ष आदि अनेक विक्रियाओं की जनक हुआ करती हैं उसी के निमित्त पतंजलि भगवान की अगले सूत्र की रचना हुई है।

सुखं वीक्ष्य कस्यापि नरस्य योगी, तथैव दुःखञ्च विलोक्य कस्यचित्।
मैत्रीं सुखे भावयते स्वचिन्ते, करुणापरो भवति चैव परस्य दुःखे।।

सूत्र है-''मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां

पुण्यानि कर्माणि च वीक्ष्य कस्यचित्, योगी प्रहृष्यत्यनुरज्यते।
तथैव संवीक्ष्य विपर्ययोऽस्य, उपेक्षते तन्न च द्वेष्टि रज्यते।।

भावनातश्चित्त प्रसादनम्।'' (ब) योगपरायण व्यक्ति की साधना फलवती तभी हुआ करती है।

एवं विधं भावमुपेत्य योगी, न विक्रियां संलभते तु चेतसः।
चित्तं प्रसीदति तथा लभते सुखञ्च, साम्ये स्थितो शुद्धयति चित्तवृत्तिः।।

जब उस व्यक्ति की मनः स्थिति प्रसाद युक्त अथवा प्रसन्नता से परिपूर्ण हुआ करती है। उसी स्थिति को किस प्रकार बनाये रखना चाहिये-यह सूत्र उसी का प्रतिपादक सूत्र है। किसी के सुख मे मैत्री भाव, दुःख में करुणा भाव, पुण्यादि कृत्यो के दर्शन पर मुदित भाव तथा पुण्य के विपरीत किये गये अपुण्य विषयों अथवा कृत्यों के प्रति उपेक्षा भाव रखना ही चित्त प्रसादन अथवा मन की प्रसन्नता का सर्वोत्तम उपाय है। इससे अन्तःकरण की शुद्धि भी हुआ।

श्रीमद्भगवद् गीतायां, प्रोक्तं भगवता स्वयम्।
''प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्यो पजायते।
प्रसन्न चेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।

श्रीमद्भवद्गीता मे स्वयं श्रीभगवान ने स्वमुखारविन्द से एतत्सम्बन्धी वचनों को कहा है कि प्रसाद अथवा मन की प्रसन्नता की उपलब्धि से समस्त दु:खों का ह्रास हो जाया करता तथा प्रसन्न मना व्यक्ति की बुद्धि शीघ्र ही स्थैर्यभाव को प्राप्त कर लिया करती है।

यस्यान्त:करणं विशुद्धममलं चेत: प्रसादाच्छुभं,
बुद्धिश्चापि स्थिरा दृढा भवतु चेत् निर्दिष्ट लक्ष्ये स्वके।
निष्ठाऽक्षुण्णा च चेत् स्यात् श्री गुरुचरण यो ध्यानं गतं मानसं,
किमसाध्यं नैव साध्यं भवति जगति चेद्योग मार्गे स्थितानांम्।।

जिस योग-परायण व्यक्ति का अन्त:करण विशुद्ध तथा निर्मल हो गया है और प्रसाद गुण से चित्त सुन्दर एवं शोभन स्थिति मे हो गया है, जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है तथा अपने निर्दिष्ट लक्ष्य के प्रति दृढ़भाव से बनी हुई है, जिसकी निष्ठा अभग्न रूप में विद्यमान है और जिसका मन श्री सद्गुरुदेव के श्रीचरण मे संलग्न व ध्यानस्थ रहता है। ऐसे सद्गुण युक्त, योग मार्गाधिरूढ़ व्यक्ति के लिये क्या है वह असाध्य जो साध्य नही हो जाता अर्थात् उन्हें सब कुछ सुलभ हो जाया करता है।

प्राणस्य मनसश्चैव, अन्योन्या लम्बिका स्थिति:।
प्राण स्थैर्यान्मन: स्थैर्यं, मन: स्थैर्यान्तु प्राणका:।।

प्राय: सभी योगपरायण साधक इस तथ्य से अभिज्ञ ही है कि प्राण तथा मन की स्थिति अन्योन्याश्रिता रहा करती है। अर्थात् यदि प्राणों की गति स्थिरता प्राप्त कर लेती है तो मन की भी स्थिरता स्वाभाविक रूप से हो जाया करती है। और यदि मन: स्थैर्य हो जाय तो प्राणों का गतिवैषम्य भी स्वत: ही समाप्त होकर प्राणस्थैर्य हो जाया करता है।

प्राणादाने न चित्तस्य, दह्यन्तेऽन्तर्गता मला:।
नाड्य: शुद्धयत्ति सर्वा हि, मनस: स्थैर्य मेव च।।

प्राणायाम क्रियाओं से चित्त के अन्तर्निहित मल आदि दग्ध हो जाया करते है। सभी नाड़ियों की भी शुद्धि होकर मन भी स्थिरता लाभ कर लेता है।

अन्येऽपि विधयस्तत्र, संरुद्धया सुन्विमुच्य च।
श्रीमद्भगवद् गीतायां, भगवता संकैतिता:।।

इस प्राणक्रिया के लिये अन्य विधियाँ भी है जिसमे प्राणों का

निरोध तथा विमुच्चन सम्मिलित है। श्री भगवान ने अपने मुखारविन्द से जिसका संकेत किया है।

"अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायाम परायणाः।।

महर्षि पंतजलि ने अपने अगले सूत्र में 'प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य' इसी प्राणक्रिया की पद्धति का विवेचन किया है जिसका मिलता जुलता श्लोक श्रीमद्भगवद्गीता में प्राप्त है। श्री भगवान के वचनानुसार साधकवृन्द अपने वायु में प्राणवायु का समागम करते है तथा कई एक प्राण में ही अपान वायु का संचरण व सम्मिलन कराया करते है। प्राण-अपान की गति को रोककर वे साधक निरन्तर प्राणायाम परायण रहा करते है।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञवि दो, यज्ञक्षपित कल्मषाः।।"

इसके अतिरिक्त, अन्य योग साधक व्यक्ति नियताहार रहते हुए प्राणों की गति को प्राणों में ही संतुलित करते हुए प्राणायाम के अभ्यस्त रहा करते है। ऐसे सभी साधक साधना से क्षीण पाप होकर साधनारत रहा करते है।

गृहीत्वा चतुरः सूत्रान्, व्याख्यातारच्छन्द सु स्वयम्।
श्री गुरूणां कृपातो हि, निमित्तोऽहं तु केवलम्।।

उपर्युक्त में चार पाँच सूत्रों की ही व्याख्या श्लोकानुबद्ध रूप में समाविष्ट है। वे सूत्र है–

(1) व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति दर्शना लब्ध भुमिकत्वा नवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः।

(2) दुःख दौर्मनस्यांगमेजयत्व श्वास प्रश्वासा विक्षेपसहभुवः।

(3) तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः।

(4) मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुख दुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चेतः प्रसादनम्।

(5) पच्छर्दन विधारणाभ्यां वी प्राणस्य। ये सब गुरुदेव की महती कृपा का ही प्रसाद है मै तो केवल निमित्त मात्र हूं।

श्री सद्‌गुरुदेव जी की अन्तर्यामिता

अवनीश कुमार भटनागर (सहारनपुर)

क्योंकि सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी आध्यात्मिक जगत की सर्वशक्ति सम्पन्न विभूति है। इसलिये यह बिलकुल सत्य ही है कि सद्‌गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी की अन्तर्यामिता के विषय में कुछ कहना या लिखना बिलकुल वही निरर्थक प्रयास होगा जिस प्रकार सूर्य के सामने दीपक दिखाने का प्रयास। महाप्रभु श्री चन्द्रमोहनजी हजारों मील की दूरी पर बैठे हुये भी अपने प्रत्येक बच्चे के मन की बातों को जानते थे। उनके सामने सैकड़ों बार ऐसे अवसर आये कि महाप्रभुश्री चन्द्रमोहनजी को यह मुँह बोलकर हमें बताने का अवसर ही नही मिल पाया। श्री महाप्रभु चन्द्रमोहन जी ने पहले ही समस्या का समाधान अपने श्री मुख से बोलकर कर दिया। ऐसी अनगिनत घटनायें महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के श्री चरणों के प्रताप से गुरु भाई समाज में घटी हुई है। उसी श्रृंखला में महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की अन्तर्यामिता की परिचायक दो घटनायें मैं यहाँ देने का प्रयास कर रहा हूँ।

बात सन् १९८८ की है परम करुणा निधान महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सहारनपुर में चार दिवसीय योग प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न करके प्रस्थान करने वाले थे पर जाने से पूर्व किसी व्यक्ति के घर श्री चरणों की कृपा बरसाने गये हुये थे। वहाँ से जब वह लौटे तो काफी भीड़ में गाड़ी आकर रुकी। श्री सद्‌गुरुदेव भगवान ने दादा सद्‌गुरुदेव श्री महाप्रभुजी की आरती की फिर प्रसाद वितरण करके प्रस्थान के पश्चात मेरे मन में दो बातें पता नहीं कहाँ से घर कर गई एक तो श्री सद्‌गुरु देव जी बिना गाड़ी के किसी के घर नही जाते, मेरे पास तो गाड़ी है नहीं, इसलिये मेरे यहाँ तो कभी आयेंगे ही नही। और दूसरी कि मैं भी सद्‌गुरुदेव जी की खूब सेवा करूँ इस सेवा में कोई भी व्यक्ति कोई कारण व्यवधान न बन सके। खैर श्री सद्‌गुरु देवजी तो अपनी अलौकिक कृपाये चार दिन बरसा कर प्रस्थान कर चुके थे बात आई गई हो गई मेरे मन में कुछ भी उपरोक्त बातों का स्मरण नही रहा कि श्री सद्‌गुरुदेव जी के प्रस्थान के समय मेरे मन में क्या बात आयी थी। अगले वर्ष श्री सद्‌गुरु देव जी अकस्मात ही मण्डी हि० प्र० से सहारनपुर पधारे और पता नही किस प्रकार से उन अन्तर्यामी परम सद्‌गुरुदेव ने ऐसा संयोग बनाया कि हमारे पास में ही आश्रम के लिये मकान देखने

को श्री सद्गुरुदेव सरकार पधारे। उसी समय वह कृपा निकेतन मुझ अधमकी झोंपड़ी पर भी पधार गये। मैं आनन्द और उल्लास में यह तय ही नहीं कर पाया कि मुझे क्या-क्या करना चाहिये इतने में ही मेरे मन में विचार आया कि ऐसे सर्वशक्तिमान, साक्षात् परब्रह्म रूप, सद्गुरुदेवजी की चरणरज को हमेशा के लिये कैसे संजोकर रखा जाये कुछ ऐसा हो जिससे हमेशा श्री चरण धूली अपने पास रहे मैंने तुरंत घर का सबसे कीमती कपड़ा लेकर बाहर से लेकर अन्दर तक जमीन पर बिछा दिया जो एक बहुत कीमती साड़ी थी। परम करुणा निधान ने उस पर अपने श्री चरण विराजमान किये और उस पर चलकर ही कमरे में विराजमान हुये। बहन उमाजी उस साड़ी को पीछे से समेटती जा रही थी। मन की दशा तो अति आनन्दमय थी ही उसमें मैं यह तय ही नहीं कर पा रहा था कि पहले मैं अपने सरकार के चरण पखारूँ, आरती करूँ, मालापहनाऊँ, भेंट समर्पित करूँ, या नैवेद्य चढाऊँ क्या करूँ कुछ समझ ही नहीं पा रहा था, इतने में अन्तर्यामी परमकृपा निकेतन श्री सद्गुरुदेवजी ने श्री मुख से फरमाया "ले प्रसाद नहीं तो फिर यह कहेगा मुझे प्रसाद भी नहीं दिया।" उनके यह शब्द मेरे कानों से ज्यों ही टकराये पिछले वर्ष की सोची हुई सारी बातें कि गुरु जो बिना गाड़ी के किसी के घर नहीं जाते और मेरे यहाँ तो कभी आयेंगे ही नहीं क्योंकि मेरे पास तो गाड़ी है नहीं। यह बात स्मरण हो आयी अब तो श्री सद्गुरुदेवजी के सामने लज्जा से सिर नहीं उठ सका। परम आश्चर्यमय होकर यह सोचने लगा तुरंत श्री गुरुदेव जी की प्रेरणा हुई और मन मे विचार आया कि क्यों कितनी गाड़ियाँ भेजी तूने गुरुदेव को लाने के लिये और कितना रुपया खर्च किया गुरुदेव को बुलाने के लिये फिर मैं भली प्रकार समझ गया कि श्री सद्गुरुदेव जी ने मेरे मन के उस दिन के संकल्प को जान लिया बिना मुख से कहे ही और उसे पूरा भी कर दिया। एक पैसा बिना खर्च कराये ही और साथ ही मुझे आभास भी करा दिया कि गुरुदेवजी को गाड़ी या कुछ और नहीं चाहिये बुलाने के लिये, चाहिये तो सच्ची श्रद्धा केवल मात्र। दूसरी सोची गई बात को श्री सद्गुरु देव महाप्रभु ने इस घटना के कुछ माह पश्चात पूर्ण किया जब वह दया निधान कुरुक्षेत्र से सहारनपुर पधारे थे। आदरणीय बहन वेदवती जी भी साथ थी (मैंने जो पूर्व में यह मन में विचारा था कि मैं अपने श्री सरकार की खूब सेवा करूँ उसमें कोई मनुष्य या कोई भी कारण व्यवधान न बन सके) तो जो-जो श्री व्यवधान सद्गुरु सेवा कार्य के बीच आ सकते थे सहारपुर पधारने से पूर्व ही परम करुणामय स्वामी ने पूर्णतः दूर कर दिये और जब परम अन्तर्यामी कृपा निकेतन श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी पधारे तो वास्तव मे ऐसा संयोग बना दिया कि श्री गुरुदेव भगवान और उनका यह अधम बालक। बस इतना ही कहना ठीक रहेगा कि जो-जो श्री सद्गुरु सेवा के प्रति मेरे विचार थे उसको

पूर्ण करते रहे और जो जो वह चाहते रहे अपने इस अधम दास से कराते रहे। इसके फलस्वरूप ही प्रसाद में उनके श्री मुख से कई दिव्य वरदान व आशीर्वाद प्रकट हो गये जो मेरे जीवन की सच्ची पूँजी बन गई।

दूसरी घटना श्री सिद्धगुफा की पावन धरती पर ही मेरे साथ घटित हुई। सन् १९८९ की बात है परम् करुणा निधान श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी की आज्ञा श्री सिद्धगुफा धाम आने की हुई मेरे जीवन में वह समय भयंकर विकट परिस्थितियों का समय था पर जब परम् सिद्धेश श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी की आज्ञा हुई तो सारी विकट परिस्थितियाँ धरी की धरी रह गईं और मैं श्री गुरु चरणों में श्री सिद्धगुफा धाम पहुँच गया। अपने श्री गुरुधाम में श्री रामनवमी श्री महाप्रभु प्रादुर्भाव दिवस वाले दिन सदैव की भाँति श्री सद्गुरुदेवजी का पूजन प्रारम्भ हुआ सभी श्रद्धालु भाई लोग पंक्तिबद्ध होकर जय-जय कार करते हुये आराध्य देव का पूजन कर रहे थे, मुझ अधम को भी यही प्रेरणा हो रही थी कि प्रातःकाल से ही बहुत लम्बी लाइन लगी हुई है कई घन्टे लग जायेंगे नम्बर आते-आते इसलिये अभी से ही पंक्ति में अपना स्थान ले लेना चाहिये। मैं लाइन में लग गया फूलमाला व पूजन सामग्री लेकर साथ ही मुँह से मन्त्रजाप करता जा रहा था। कुछ समय बाद मैंने देखा कि मेरे पीछे लाइन में काफी बढ़ोतरी हो गई और भीड़ का दबाव भी आगे की ओर बढ़ा, डन्डे आदि लगाकर बनाई गई सारी व्यवस्था प्रातःकाल से ही ध्वस्त हो गई, सारी लाइन भी अस्त व्यस्त हो गई, पर पुनः लाइन बनवाई गई और फिर सारा कार्य बिना व्यवधान के ठीक प्रकार से चलता रहा। मुझे कई घंटे लाइन में लग ही गये थे मेरा नम्बर भी १०-१२ भाइयों के बाद आने ही वाला था इतने में मेरी दृष्टि अपने हाथों की फूलमालाओं पर गई, मैं तो यह देखकर दंग रह गया कि दोनों मालायें कुछ तो हाथों की गर्मी व कुछ वातावरण की गर्मी से बिलकुल कुम्हला गई थी और देखने से ऐसा लगता था जैसे कई दिन पुरानी हो मैं तो लज्जा से भर उठा और सोचने लगा अरे अपने आराध्य देव जी सरकार के चरणों में ऐसी सूखी माला लेकर जायेगा, यह विचार मन में आते ही सोचने लगा अब नम्बर भी आने ही वाला है स्वयं भी माला लेने जा नहीं सकता कोई परिचित दिखाई दे जाये तो उससे मंगा लूँ पर परिचित भी कोई दिखाई नही दे रहा था कोई रास्ता ही नहीं सूझ रहा था कि क्या किया जाये इतने में अकस्मात ही मैंने देखा कि हमारी एक बहुत ही पुरानी गुरु बहिन अपने साथ किसी महिला को लिये आ रही है इधर मैं अपने मन में सोचने लगा कि इनसे माला मंगा लूँगा पर जब देखा कि नम्बर तो आने वाला है माला इतने में नहीं आ पाई तो क्या यही गन्दी कुम्हलाई माला ही समर्पित करनी पड़ेगी आदि-आदि विचार मन में आने लगे। पर वाह-वाह मेरे श्री सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी

महाराज की अन्तर्यामिता मेरे पास पहुँच कर आदरणीय बहन जी अपने साथ की महिला से बोली "अरे लाओ यह खड़े तो है इनको अपनी माला दे दो यह जाकर श्री गुरुदेवजी को तुम्हारी माला पहिना देंगे, मैंने उनकी बात सुनकर कहा कि जब आपने श्री गुरुदेव भगवान के पूजन के लिये ली है तो आप स्वयं क्यों नही पहनाती तो वह महिला बोली भैय्या यह मेरी नहीं मेरे पतिदेव की माला है अधिक भीड़ के कारण माला नही पहना पायेंगे आप इन मालाओं को ले लो मैंने वह मालायें ले ली मालाओं को देखा तो उसमें दो फूलों की मालायें एक पाँच रुपये का नोट रखा हुआ था मालाओं को देखते ही मुझे अपने मन में आने वाली सारी बातों का स्मरण हो आया और मन उल्लास से भर गया मन मे विराजमान श्रद्धादेवी का और अधिक विस्तार हो गया और मन में सोचने लगा कि श्री करुणानिधान सरकार ने यह क्या लीला की जिसने यह माला खरीदी उसको तो भीड़ के डर से लाइन से हटा दिया और मैंने जबकि इसमे कोई परिश्रम नही किया मेरे पास यह माला पहुँचा दी। मै तो विचारमग्न ही था इतने मे विचार मुक्त हुआ तो देखा मेरा नम्बर आ चुका था व्यवस्था बनाने वाले भाइयों ने मुझे श्री महाप्रभु श्री चन्द्रमोहनजी के सामने भेज दिया मैंने अपनी भी और दी हुई भी सभी मालायें अपने महाप्रभु श्रीचन्द्रमोहनजी महाराज के ही चरणों मे समर्पित कर दी मुझे कृपानाथजी ने आशीर्वाद, मालायें व प्रसाद देकर विदा कर दिया। अब मैं अपनी उन गुरुबहन जी को ढूंढने लगा जो उस महिला को मेरे पास लाई थी ढूंढने पर वह मिल गई मैंने उनसे कहा बहन जी यह प्रसाद उन बहन जी का है जिनको आप अपने साथ लाई थी। जिनकी माला आपने मुझे दी थी यह उनको दे देना। पर जब मेरे लिये महान आश्चर्य का कारण बन गया यह सुनकर कि भय्या मै उन बहन जी को नही जानती वह तो मुझे यही मिली थी और लाइन में लगे हुये भाइयों से कह रही थी मेरी माला भी पहना देना। किसी ने सुना नहीं मै उधर से आ रही थी यह मुझसे बोली बहन जी मेरी माला भी श्री सद्गुरुदेवजी के चरणों तक पहुँचवा दो मै उस महिला को लेकर इधर आ रही थी सामने मुझे तुम लाइन मे लगे दिखाई दिये और तुम्हें उसने माला दे दी उसके बाद मुझे पता नही वह कौन थी कहाँ ठहरी थी। आश्रम मे ढूंढ लो ? शायद मिल जाये। फिर उनका प्रसाद उन्हीं को दे देना. मैंने उस महिला को सारे आश्रम में ढूंढा पर वह मुझे कहीं नही मिली। अपने करुणा निधान सद्गुरुदेव महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की उस अन्तर्यामिता की लीला को स्मरण कर आज भी मन श्रद्धा से झुम उठता है।

* * *

महादेवस्ततः स्मृतः

एकान्ते मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च ।
प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् ।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तस्य ध्यानपरो भवेत् ॥

यद् ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमद्वयम् ।
योऽन्तरात्र परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥

एव देवो महादेवः केवलः परमः शिवः ।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥

यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते ।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥

एकका ही अन्न भक्षण करने, मधु ग्रहण करने, नव श्राद्ध सम्बन्धी अन्न तथा प्रत्यक्ष लवण खाने पर प्राजापत्यव्रत को (पाप की) शुद्धि का उपाय बतलाया गया है। निरन्तर ध्याननिष्ठ पुरुष के सभी पातक नष्ट हो जाते हैं, इसलिये महेश्वर का ज्ञान प्राप्त कर इनके ध्यान में परायण रहना चाहिए। जो ब्रह्म परम ज्योति रूप, सभी का अधिष्ठान, अक्षर अद्वितीय है तथा जो सभी के भीतर स्थित है, परम ब्रह्म है, उसे महेश्वर जानना चाहिये। ये ही महेश्वर देव, महादेव एवं अद्वितीय परम शिव हैं। ये ही अविनाशी, अद्वित हैं और ये ही आदित्य के भीतर प्रतिष्ठित परम (तत्त्व) हैं। आत्मयोग नाम से प्रसिद्ध, स्वप्रकाश, नित्य-ज्ञान नाम से भी विख्यात, परम तत्त्वरूप अपने धाम में सर्वाधिक पूजनीय-रूप से ये महेश्वर प्रतिष्ठित है, इसीलिये महादेव कहे गये हैं।

SIDDHAYOGA Regd. No. L. AG. 008

OCTOBER 1997

प्रेषण कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सपाई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री ---------------------------

ब्रह्म ही प्रभु है

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि ।।

—विष्णु पुराण 1/15-57

ब्रह्म ही प्रभु है, ब्रह्म ही सर्वजीव रूप है और ब्रह्म ही सकल प्रजा का पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। यह ब्रह्म अव्यय, नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारों से शून्य विष्णु है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र